Chapter-6

:: अध्याय : छः ::

:: ओशो-साहित्य : शिल्प एवं भाषिक-संरचना ::

:: अध्याय : छः ::

:: ओशो-साहित्य : शिल्प एवं भाषिक संरचना ::

प्रास्ताविक :

जिस प्रकार कुछ लोग प्रतिज्ञाबद्ध होकर साहित्य की रचना करते हैं और इस तरह साहित्यकार की संज्ञा को प्राप्त होते हैं । ओशो की गणना ऐसे साहित्यकारों में नहीं होती । वे साहित्यकार बनना नहीं चाहते थे, पर बन गये हैं । अनायास हो गये हैं । और जो बात अनायास होती है, उसमें अधिक प्राणवत्ता होती है । अधिक नैसर्गिकता होती है । जहां प्रयास होता है, वहां थोड़ी कृत्रिमता का समावेश तो होगा ही । मीरां के पद अनायास हैं । मीरां के नृत्य के साथ वे अनायास फूट पड़े हैं । सूरदास के पद अनायास हैं । इकतारे के साथ वे अचानक बह निकले हैं । कबीर की साखियां, पद, रमैनियां अनायास बने हैं । कबीर उन्हें

बनाने नहीं बैठे थे । वे तो बनाते थे राम की चदरिया । और उस चदरिया को बुनते-बुनते फूट पड़ते थे पद , फूट पड़ते थे गीत । उन्हें लिखते भी नहीं थे वे , क्योंकि पढ़े-लिखे तो थे नहीं । दूसरे लोग लिख लेते थे । तो ओशो का भी ऐसा ही है । जन-मेदनी के किनारों को छूने के लिए उनके भीतर का सागर ठाठें मारता था , हिल्लोरें लेता था , और उनकी उन हिल्लोरों को लोग लिख लेते थे , टेप कर लेते थे , और उन टेपों से फिर बनते गये ग्रन्थ । कहीं- कहीं उनके कुछ पत्र हैं । वे पत्र भी ज्यादातर दूसरों से लिखवाते रहे होंगे । कुछ स्वयं भी लिखे होंगे । बहरहाल बात इतनी है कि ओशो ने कभी सायास साहित्यकार होने की मंशा से कुछ नहीं किया । पर फिर भी उनका जो साहित्य आज उपलब्ध होता है , वह साहित्य का सिरमौर है , साहित्य का श्रृंगार है ।

(क) शिल्प

इस अध्याय का प्रथम विभाग है : शिल्प । शिल्प का अर्थ है बुनावट , क्राफ्ट , प्रस्तुति का ढंग , बात कैसे कही गई , किस रूप में कही गई । जिस प्रकार कोई पुष्प होता है , तो उसका एक विशेष आकार-प्रकार , विशेष रंग , विशेष सुगंध होगी और इन्हीं गुणधर्मों के कारण उसे कोई एक नाम दिया जायेगा ; जैसे गुलाब , मोगरा , कमल, जुही , शिरीष आदि आदि । ठीक उसी प्रकार साहित्य के उद्यान में भी तरह-तरह के प्रसून होते हैं । उन्हें साहित्य के रूप , विधा , प्रकार या जेनर कहते हैं । साहित्य की प्रत्येक विधा का अपना एक अलग शिल्प होता है , रचना-विधान होता है , क्राफ्ट होता है । समय के लम्बे अंतराल में गालिबन साढ़े पांच करोड़ शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है ।[1] और ये शब्द अलग-अलग साहित्य रूप में जाकर बैठ गये हैं । कहीं इन शब्दों ने कविता का रूप धारण कर लिया है , तो कहीं गद्यकाव्य की-सी छटा बिखेरते दृष्टिगोचर होते हैं ,

तो कहीं लघुकथा का रूप ले लिया है , कहीं निबंध तो कहीं लेख , कहीं साक्षात्कार , कहीं पत्र तो कहीं डायरी का रूप ले लिया है । यहां पर उनमें से कुछेक काव्य-रूपों पर विचार करने का उपक्रम है ।

कविता :

कविता के रूप और परिभाषा को लेकर अनंत काल से बातें चल रही हैं और अनंत काल तक चलती रहेंगी । "कविता क्या है " पर बड़े-बड़े निबंध लिखे जा चुके हैं , ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं । परंतु इस संसार में कुछ संज्ञाएं ऐसी हैं जिनको आप परिभाषित नहीं कर सकते । प्रेम , भक्ति , ईश्वर , सौन्दर्य , सत्य , कविता आदि को परिभाषा के चौखटे में कैद करना असंभव है । पर हां , उसके कुछ अभिलक्षणों पर बात हो सकती है कि कविता में शब्द-लाघव की प्रवृत्ति होती है , उसमें छंद ताल लय संगीत होता है , उसमें प्रतीक और बिम्ब और अलंकार होते हैं , उसमें कल्पना का वैभव होता है , उसमें हृदय को छू लेने की शक्ति होती है , शब्दों की जादूगरी होती है । वह कभी सुदर्शन चक्र , कभी बांसुरी , कभी लोरी तो कभी बिरहा की तान बन जाती है । उसके लगने पर "तन-मन-धुनत शरीर" वाली स्थिति का निर्माण होता है । उसका स्वरूप निरंतर बदलता रहता है — पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश । ओशो अपने व्याख्यानों में जब मस्ती में झूमने लगते हैं तब उनके होठों से कविता झरने लगती है ।

जैसे एक स्थान पर बुल्लेशाह के वचनों की बात करते-करते ओशो मस्ती में आ जाते हैं : सिर्फ शून्य , सिर्फ मौन , बाहर तर्क है , विज्ञान है ; भीतर ध्यान है , समाधि है , सुधिया । और तब जिन्दगी बदल जाती है । जरा-सी नयी नजर की जरूरत है ।
मुझे दे दे —
रसीलें होंठ , मासूमाना पेशानी , हंसी आंखें
कि इक बार मैं फिर रंगीनियों में गर्क हो जाऊं

मेरी हस्ती को तेरी इक नजर आगोश में ले ले
हमेशा के लिए इस दाम में महफूज हो जाऊं
जिया-ए-हुस्न से जुल्माते-दुनिया में न फिर आऊं
गुजश्ता हसरतों के दाग मेरे दिल से धुल जाएं
मैं आनेवाले गम की फिक्र से आजाद हो जाऊं
मेरे माजी व मुस्तकबिल सरासर मह्व हो जाएं
मुझे वो इक नजर, इक जाविदानी सी नजर दे दे । [2]

बस इतनी सी बात चाहिए — एक अमृत को देखने वाली आंख, एक जाविदानी सी नजर । यहां ओशो की जो छटा है वह कोई सूफी संत औलिया, कोई रहस्यदर्शी कवि जैसी है । और कविता का यह झरना अनायास ही फूट पड़ा है । वर्ड्सवर्थ के शब्दों में कहें तो "स्पोन्टेनीयस ओवर फ्लो आफ पावरफुल फीलिंग्स" ।

इसी प्रकार एक जगह पर वे प्रेम की बात करते-करते एक पूरी नज्म कह डालते हैं । मजनू पागल था लैला के लिए । एक बार राजा ने उसके सामने बारह सुंदरियों को खड़ी कर दीं । लैला इनके सामने कुछ भी न थी । वह तो एक सामान्य रूप-रंग वाली लड़की थी । परंतु मजनू इन सबको देखकर नकारता गया कि इनमें मेरी लैला तो कोई भी नहीं है । तो लोगों को लगता है कि प्रेमी पागल होता है । हां दुन्यवी दृष्टि से उसे पागल ही कहा जायेगा । परंतु प्रेमी के पास अपने प्रिय को देखने की जो आंख है, वह दूसरे ही प्रकार की होती है । उस आंख से उसे अपनी प्रियतमा हुस्न का एक दरिया लगती है । देखिए इस पर ओशो की यह नज्म —

दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह
मुझसे शाने-जल्वाफर्माई न पूछ
किस तरह वह सामने आयी न पूछ
उसका हुस्न और उसकी रानाई न पूछ
वह हिजाब-आलूदा अंगडाई न पूछ

वह तबस्सुम , वह तरन्नुम , वह शबाब
वे निगाहें , वे अदाएं , वह हिजाब
उसके आरिज में लहकता है गुलाब
उसकी आंखों में बरसती है शराब
पीके बेखुद न हो जाता किस तरह
दोस्त मैं अपना दामन बचाता किस तरह

उसके ओठों पर जब आती है हंसी
फैल जाती है फज़ा में चांदनी
वह है चलती-फिरती जूही की कली
वह है हंसती-मुस्कुराती बांसुरी
गीत उल्फत के न गाता किस तरह
दोस्त मैं अपना दामन बचाता किस तरह

ढूंढता था हुस्न उसका तख्तो-ताज
मांगती थी उसकी रानाई खिराज
सोहनी का नाज , राधा का मिजाज
चाहती थी कर ले मेरे दिल पे राज
मैं भला आंखें चुराता किस तरह
दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह

दिल पे हंस कर तीर खाना ही पड़ा
उसके आगे सर झुकाना ही पड़ा
होश मजबूरन गंवाना ही पड़ा
जब्त का खिरमन जलाना ही पड़ा
और जलाता तो बुझाता किस तरह
दोस्त मैं दामन बचाता किस तरह । [3]

यहां माशूका के सौन्दर्य का जो वर्णन है वह सूफी कवियों जैसा है । वे माशूका और अल्लाह में कोई अन्तर नहीं करते । माशूका का

शबाब मानो रोशनी का एक जलवा है । उसके सामने आँखें चौंधिया जाती है । ओशो कहते हैं प्रेम में अहंकार को गंवाना पड़ता है । प्रेम में अहंकार को गंवाने से ध्यान की पहली झलक प्राप्त होती है । और जहां इस स्थिति का निर्माण होता है , वहां दिल गाने लगता है --

फिर तुम्हें लिख दूं धरा के भाल पर
फिर तुम्हें रच दूं गगन के गाल पर
हो गये मुझको बहुत से दिन तुम्हारी छवि संवारे
झर गये कितने धरा के फूल , नभ के नील तारे
भूल बैठे रात-दिन आलोक की पगडंडियों को
भूल बैठी है नदी सौन्दर्य से जकड़े किनारे

फिर तरंगों को तुम्हारी बांह दूं
फिर कमल-वन को तुम्हारी छांह दूं
है समय छिछला , बहुत ओछा , नशे के ज्वार जैसा
स्वप्न मेरा गुरु-गहन है जागरण के सार जैसा
मुक्त , चिर निर्बन्ध में मेरे हृदय की भव्यता हो
इन घृणा के कंटकों में तुम दया की दिव्यता हो

रागबंधों का तुम्हें सत्कार दूं
पूर्ण अर्पण का अकंपित प्यार दूं
शुक्लवर्णी ऋतु तुम्हीं में आंक दूं
छोर सुषमाxमें के तुम्हीं में टांक दूं
मैं तुम्हें बांधू गिरा के प्राण से
रूप-श्री लालित्य के दिनमान से
फिर तुम्हें लिख दूं धरा के भाल पर
फिर तुम्हें रच दूं गगन के गाल पर । " [4]

यहां जो दो उदाहरण दिये गये हैं उनमें एक में उर्दू-शायरी की रवानी है , तो दूसरी में हिन्दी का बांकेपन । प्रेम की भावना

के अनुरूप ही उपमानों , विशेषणों , बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग हुआ है । अपने रूपबंध में एक सुरेख गीत हमें मिलता है ।

गद्यकाव्य :

ओशो का गद्य भी हमें काव्य का-सा आनंद देता है । अतः अनेक स्थानों पर उनका गद्य गद्यकाव्य का रूप ले लेता है । यहां एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

"प्रेम का अर्थ है , जहां तुम मिट जाओ । प्रेम महामृत्यु है । तुम जहां शून्य हो जाते हो वहीं परमात्मा प्रकट होता है , अपने अनंत रूपों में । जहां तुम खो जाते हो , वहीं उसकी वीणा बज उठती है ; अनंत स्वर-संगीत तुम्हें घेर लेते हैं । लेकिन तुम बचते नहीं , कहनेवाला नहीं बचता । पहली बात : भाषा छोटी है , संकुचित — थोड़े-से शब्द , बच्चे के तुतलाने जैसे । फिर दूसरी बात : प्रेम को जाननेवाला , जानने में खो जाता है , पिघल जाता है , बह जाता है ; बोलनेवाला बचता नहीं । जब बोलने योग्य कुछ होता है जीवन में तो बोलनेवाला नहीं बचता । जब तक बोलनेवाला होता है जीवन में तो कुछ बोलने योग्य नहीं होता । .... जितनी होती है गहरी समझ , उतना ही मौन प्रगाढ़ होने लगता है । फिर अगर तुम बोलते भी हो , तो xxxxx जानकर बोलते हो , मजबूरी है ; दूसरा समझ न सकेगा मौन को , इसलिए मुखर होते हो । लेकिन एक क्षण को भी यह बात विस्मरण होती कि जो पाया है वह कहा न जा सकेगा , क्योंकि कहनेवाला भी शेष नहीं रहा उसी पाने में ; उसे भी , उसी पाने में उसे दे डाला है । उसे देकर ही तो पाया है । इसलिए जीसस का वचन अनूठा है , जब जीसस ने कहा : परमात्मा प्रेम है । जीसस ने यह कहा कि परमात्मा को छोड़ दो तो भी चलेगा , प्रेम को मत छोड़ देना । परमात्मा को भूल जाओ , कुछ हर्जा न होगा ; प्रेम को मत भूल जाना । प्रेम है तो परमात्मा हो ही जायेगा , और अगर प्रेम

नहीं है तो परमात्मा पत्थर की तरह मंदिरों में पड़ा रह जायेगा, मुर्दा, लाश होगी उसकी, उससे जीवन खो जायेगा । *5

इसी संदर्भ में एक और उदाहरण देखिए : " मैं तुम्हें फैलना सिखाता हूं । मैं तो मानता हूं, विस्तीर्ण होना ही ब्रह्म के निकट आने का उपाय है । हमारा शब्द "विस्तार" ब्रह्म शब्द का ही एक रूप है । ब्रह्म का अर्थ होता है जो विस्तीर्ण होता चला जाये । जिसके विस्तार का कोई अंत ही न आये । फैलता जाये, फैलता जाये । आनंद फैलाव है, दुख सिकुड़ाव है । तुमने अनुभव भी किया होगा, जब तुम दुखी होते हो तो बिलकुल सिकुड़ जाते हो । जब तुम दुखी होते हो द्वार-दरवाजे बन्द करके एक कोने में पड़े रहते हो । तुम चाहते हो कोई मिले न, कोई बोले न, कोई देखे न, कोई दिखाई न पड़े । बहुत दुखकी अवस्था में आदमी आत्मघात तक कर लेता है, वह भी सिकुड़ने का ही अंतिम उपाय है । ऐसा सिकुड़ जाता है कि अब दोबारा न देखना है रोशनी सूरज की, न देखना है चेहरे लोगों के, न देखना है खिलते गुलाब । जब अपना गुलाब न खिला, जब अपना सूरज न उगा, जब अपने प्राण न जगे, तो अब दुनिया जागती रहे, इससे क्या, हम तो सोते हैं । आनंद है आत्म-अनुभव । उत्सव है परमात्मा के प्रति धन्यवाद । ममम×सुम×हरे यह सुनते हो दूर कोयल की कुहू-कुहू । ऐसे ही तुम्हारे प्राणों में भी कोयल छिपी है । तुम्हारे अंतरतम में भी x पपीहा है, जो पुकार रहा है — पी कहां । .... खोलो द्वार-दरवाजे । ये तुम्हारी सारी इन्द्रियां आनंद के द्वार बने । यह तुम्हारी देह आनंद को झेलने के लिए पात्र बने । यह तुम्हारा मन आनंद को अंगीकार करने योग्य शांत बने । ये तुम्हारे प्राण आनंदित होने के योग्य विस्तीर्ण हों । फिर जो होगा वह उत्सव है । फिर तुम भी चांद-तारों के साथ, फूलों के साथ, वृक्षों के साथ, हवाओं के साथ नाच सकोगे । उत्सव आनंद की अभिव्यक्ति है । " 6

लघुकथा :

ओशो की प्रवचन-यात्रा में बहुत-से ऐसे प्रसंग आते हैं जो लघुकथा का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसी लघुकथाएं ओशो में इतनी मिलती हैं कि उन पर अलग से भी अध्ययन हो सकता है। यहां केवल एक-दो उदाहरण देने का उपक्रम है।

भारत की दरिद्रता पर विचार करते हुए ओशो कहते हैं कि उसका कारण यह है कि हम हमेशा कलश का विचार करते रहे, नींव का विचार नहीं किया। हम आकाश की बातें करते रहे, पृथ्वी को भुला दिया। जिंदगी की नींव है भौतिकता, जिंदगी की नींव है पदार्थ में और उसका शिखर है परमात्मा में। हमने कहा, हम पदार्थ का इनकार करेंगे, हम भौतिकवादी नहीं है, हम शुद्ध अध्यात्मवादी हैं, हम तो सिर्फ अध्यात्म के कलशों में ही जियेंगे, हम आकाश की तरफ उन्मुख होंगे, धरती की तरफ नहीं देखेंगे। हम फूलों को चाहेंगे, जड़ों की परवाह नहीं करेंगे। इस बात को समझाने के लिए ओशो ने दो कथाएं कही हैं जो बड़ी ही सुंदर हैं और समझने योग्य हैं।

"मैंने सुना है, यूनान में एक बहुत बड़ा ज्योतिषी था। वह एक सांझ निकल रहा है रास्ते से। आकाश के तारों को देखता हुआ और एक कुएं में गिर पड़ा है क्योंकि आकाश के तारों में जिसकी नजर लगी हो उसको जमीन के गड्डे दिखायी पड़ें, मुश्किल है। दोनों एक साथ नहीं हो पाता। वह एक गड्डे में गिर पड़ा है, एक सूखे कुएं में। हड्डियां टूट गयी हैं, चिल्लाता है। पास के झोंपड़े से एक बूढ़ी औरत उसे बामुश्किल निकाल पाती है। निकलते ही वह उस बूढ़ी औरत को कहता है कि मां, शायद तुझे पता नहीं है कि मैं कौन हूं। मैं एक बहुत बड़ा ज्योतिषी हूं। संभवतः मुझसे ज्यादा आकाश के तारों के संबंध में आज पृथ्वी पर कोई भी नहीं

जानता है । अगर तुझे कभी आकाश के तारों के संबंध में कुछ जानना हो तो मेरे पास आना । दूसरे लोग तो आते हैं तो हजारों रुपये फीस देनी पड़ती है , तुझे मैं ऐसे ही समझा दूंगा । उस बूढ़ी औरत ने कहा , बेटे , तुम फिक्र मत करो , मैं कभी न आऊंगी । क्योंकि जिसे अभी जमीन के गड्डे नहीं दिखायी पड़ते , उसके आकाश के तारों के ज्ञान का मुझे भरोसा नहीं है । " 7

"माओ ने अपने बचपन का एक संस्मरण लिखा है , वह मुझे बहुत प्रीतिकर रहा है । उसने लिखा है कि मेरी मां की एक बगिया थी । एक छोटी-सी बगिया मेरी मां ने बनायी थी । वह बूढ़ी हो गयी और बीमार पड़ गयी । वह इतनी बीमार थी कि बगिया में नहीं जा सकती थी । वह बहुत चिंतित थी कि कहीं फूल कुम्हला न जायें । तो उसने अपने बेटे को कहा कि तू देख सकेगा ? उसके बेटे ने कहा , तू बिलकुल निश्चिंत रह , मैं बगिया की पूरी फिक्र कर लूंगा । लेकिन उस बेटे को यह पता नहीं था कि फूलों के प्राण जमीन की छिपी हुई जड़ों में होते हैं । जड़ें तो दिखायी पड़ती नहीं । दिखाई तो फूल पड़ते हैं , उस बेटे को पता न था । उस बेटे ने एक-एक फूल को पानी दिया , एक-एक फूल को झाड़ा , पोंछा , प्रेम किया । पन्द्रह दिन में बगिया सूख गयी । जब बूढ़ी उठी , उसने देखा तो पूछा कि यह क्या हुआ बगिया का ? यह बगिया तो नष्ट हो गई । ये फूल तो सूख गये । तो उस बेटे ने कहा , मैं क्या करूं ? मैंने तो एक-एक फूल को प्रेम किया , एक-एक फूल को झाड़ा , पोंछा , संवारा , लेकिन पता नहीं क्या हुआ कि ये फूल सूखते चले गये । उस बूढ़ी औरत ने कहा , बेटे जड़ों की फिक्र की ? उसने कहा , कैसी जड़ें ? जड़ों का तो मुझे कुछ पता ही नहीं , जड़ें कहां हैं ? उस बूढ़ी स्त्री ने कहा कि जड़ें जमीन में दबी हैं । " 8

ऐसे गुलामी के संबंध में ऊंटवाली कहानी , विश्वास या भरोसे के संबंध में गुरजिएफ वाली कहानी , गांधीजी के सत्याग्रह के संबंध में

एक बूढ़ी वेश्यावाली कहानी जैसी अनेक लघुकथाएं हमें प्राप्त होती हैं ।

समालोचना :

समालोचना को भी साहित्य का एक रूप ही माना गया है । हिन्दी के बहुत-से साहित्यकारों की गणना उनके समालोचना-साहित्य के कारण ही होती रही है । यदि ओशो का यही एक रूप लिया जाये तो भी हिन्दी साहित्य में उनको प्रस्थापित करने के लिए पर्याप्त है । उन्होंने हिन्दी के कई आदिकालीन तथा मध्यकालीन कवियों पर व्याख्यान दिये हैं, जिन में सरहपा, अमीर खुसरो, गोरखनाथ, कबीर, दादू, रैदास, पलटूदास, मलूकदास, सहजोबाई, दयाबाई, दरिया, जगजीवनदास, मीरांबाई आदि मुख्य हैं । इन कवियों को लेकर उनके जो ग्रंथ हैं वे इस प्रकार हैं :— सुनो भई साधो, कहै कबीर दीवाना, कहै कबीर मैं पूरा पाया, मगन भया रसि लागा, घूंघट के पट खोल {कबीरदास} ; पद घुंघरू बांध, झुक आई बदरिया सावन की {मीरांबाई} ; मरौ है जोगी मरौ {गोरखनाथ} ; सब सयाने एक मत, पिव पिव लागी प्यास {दादू}; नामसुमिर मन बावरे, अरी मैं तो नाम के रंग छकी {जगजीवनदास} ; अजहूं चेत गंवार, सपना यह संसार, काहे होत अधीर {पलटूदास} ; हरि बोलौ हरि बोल, ज्योति से ज्योति जले {सुंदरदास} ; जस पनिहार धरे सिर गागर, का सोवै दिन रैन {धरमदास} ; कन थोरे कांकर घने, रामदुवारे जो मरे {मलूकदास} ; कानों सुनी सो झूठ सब, अमी झरत बिगसत कंवल {दरिया} ; एक ओंकार सतनाम {नानक} ; जगत तरैया भोर की {दयाबाई} ; बिन घन परत फुहार {सहजोबाई} ; संतो मगन भया मन मेरा {रज्जब} ; कहै वाजिद पुकार {वाजिद} ; सहज-योग { सरहपा-तिलोपा} ; प्रेम-रंग रस ओढ़ चदरिया {दूलन} ; हंसा तो मोती चुगै {लाल} , गुरु परताप साधु

की संगति {भीखा} ; मन ही पूजा मन ही धूप {रैदास} ; झरत दसहुं दिस मोती {गुलाल} ; रहिमन धागा प्रेम का {रहीम} । इनके अतिरिक्त प्रश्नोत्तर के रूप में उनकी कई पुस्तकें और पुस्तिकाएं हैं जिनमें भी इन सन्तों के साहित्य की चर्चा किसी-न-किसी रूप में हुई है । उनमें निम्नलिखित मुख्य हैं : — नहिं राम बिन ठांव , प्रेम-पंथ ऐसो कठिन , उत्सव आमार जाति आनंद आमार गोत्र , प्रीतम छवि नैनन बसी , सुमिरन मेरा हरि करै , पिय को खोजन मैं चली , साहेब मिल साहेब भये , जो बोलैं तो हरिकथा , ज्यूं था त्यूं ठहराया , ज्यूं मछली बिन नीर , दीपक बारा नाम का , अनहद में बिसराम , सहज आसिकी नाहिं , पीवत रामरस लगी खुमारी , आपुई गयी हिराय , बहुतेरे हैं घाट , फिर पत्तों की पाजेब बजी , फिर अमरीत की बूंद पड़ी , चल हंसा उस देस , पंथ प्रेम को अटपटो , कहा कहूं उस देस की आदि आदि ।

इन ग्रन्थों में हमें एक आलोचक ओशो के दर्शन होते हैं । उनकी आलोचना वादग्रस्त न होने के कारण अधिक स्वस्थ है । उनकी आलोचना पद्धति को हम प्रभाववादी आलोचना तथा व्याख्यात्मक आलोचना के अन्तर्गत रख सकते हैं । प्रभाववादी आलोचना सृजनात्मक होती है और ओशो का यह पक्ष सर्वाधिक बलवत्तर है । ओशो बहुश्रुत हैं । अतः उनकी व्याख्या में जीवन और जगत के अनेक पक्ष , अनेक आयाम उभरकर सामने आते हैं । दूसरे ओशो की इन आलोचनाओं को पढ़ते हुए कभी बोरियत का अनुभव नहीं होता , क्योंकि वे शुष्क और नीरस नहीं होती । ओशो की प्रतिभा के पारस-स्पर्श से आलोचना में भी मूल काव्य का-सा आनंद प्राप्त होता है । ओशो को पढ़ने का अर्थ है जीवन के प्रगाढ़ अनुभवों से गुजरना , विश्व में जो भिन्न-भिन्न स्तरों पर श्रेष्ठ व्यक्तित्व हुए हैं उनसे साक्षात्कार करना , विश्व के श्रेष्ठतम को पहचानना , अपने आपका विस्तार करना ,

अपनी चेतना का विस्तार करना । एक बात और है कि ओशो के साहित्य को इन अलग-अलग रूपों में विभाजित करना भी मुश्किल है, क्योंकि वे एक रूप में से दूसरे रूप में कब -कैसे संक्रमित हो जाते हैं, उसका पता भी नहीं चलता । जैसे ऊपर जिन मध्यकालीन कवियों की व्याख्याओं की जो बात कही गई है, उनमें कई बार वे ललित-निबंध के क्षेत्र में भी पहुंच जाते हैं ।

लेख-निबंध इत्यादि :

ओशो ने अधिकांशतः व्याख्यान दिये हैं और उनके ये व्याख्यान बाद में ग्रन्थस्थ हुए हैं । इन व्याख्यानों में जो वस्तु है, वह कहीं लेख का रूप धरकर आया है, तो कहीं निबंध का । कुछ निबंध तो शिक्षा, युवक, गांधीवाद, समाजवाद, प्रगतिवाद, पूंजीवाद, नारी, दलित, वस्ती-विस्फोट की समस्या, गरीबी की समस्या, राष्ट्रीयता, राष्ट्रभाषा की समस्या जैसे विषयों पर है । वहां ओशो की तर्क-शक्ति और बुद्धि-कौशल का वैभव दृष्टिगोचर होता है । लाओत्से, महावीर, बुद्ध, कबीर, जीसस, जरथुस्त्र, झेन साधु, सूफी-संतों पर जहां ओशो बोले हैं वहां उनके गहन-गंभीर ज्ञान, प्रगाढ़ दर्शन, बहुश्रुतता आदि के दर्शन होते हैं । परंतु ओशो का हृदय तो वहा है जब वे कबीर, दादू, रैदास, मलूक, मीरां आदि पर बोले हैं । ओशो के इन लेखों-निबंधों को हम चिंतनात्मक, विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक तथा ललित निबंधों की नाना सरणियों में रख सकते हैं ।

संस्मरण :

संस्मरण को भी अब साहित्य का एक रूप माना गया है । ओशो की व्याख्यान-यात्रा में अनेक विषय आये हैं । उन अनेक विषयों की मीमांसा करते हुए ओशो ने बीच-बीच में अनेक संस्मरण सुनाये हैं । ये संस्मरण

महात्मा गांधी , डा. बाबासाहब अम्बेडकर , पंडित जवाहरलाल नेहरू , जयप्रकाश नारायण , राजेन्द्र बाबू , विनोबा भावे , डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् , मोरारजी देसाई , ~~इन्दिरा~~ इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी , माओ , लेनिन , चर्चिल , रैगन , स्टालिन , हिटलर, फ्रायड , आल्फ्रेड हिचकोक , सार्त्र , नित्से , कामू , काफ्का , किर्केगार्द , सोल्जेनित्सिन , लिंकन , गुरजिएफ , बुद्ध , महावीर , कृष्ण , राम , विवेकानंद , रामकृष्ण , स्वामी रामतीर्थ , जे. कृष्णमूर्ति , केनेडी , रोकफेलर आदि अनेक इतिहास-ख्यात व्यक्तियों से सम्बद्ध हैं । इनमें कुछ संस्मरण तो ऐसे हैं जिनका ओशो से प्रत्यक्ष संबंध है , और कुछ ऐसे हैं जो उनके विशाल पठन-पाठन के कारण आये हैं । वे इन संस्मरणों का प्रयोग अपनी कोई बात को समझाने के लिए या व्यंग्य चलाने के लिए करते हैं । कई बार उनके ये संस्मरण लघुकथा का रूप भी धारण कर लेते हैं ।

पत्र :

पत्र-साहित्य की गणना भी साहित्यिक रूपों में होने लगी है । परंतु यहां यह बात ध्यातव्य रहे कि केवल वे ही पत्र साहित्यिक गरिमा के अधिकारी होते हैं जिनमें व्यष्टिगत पक्ष समष्टिगत पक्ष के रूप में रूपांतरित हो जाता है और जो जीवन और जगत के किसी विशिष्ट सत्य को उद्घाटित करने के कारण संग्रहणीय हो जाते हैं । उनमें लोकमंगल की भावना भी निहित होती है । भविष्यत् पीढ़ी के लिए उसमें कोई दिशा-निर्देश भी होता है । महात्मा गांधी के पत्र , सरदार पटेल का पत्राचार , पंडित नेहरू के इन्दिरा के नाम लिखे पत्र , मुंशी प्रेमचन्द के पत्र आदि ऐसे ही पत्र हैं जिनमें हमें साहित्य की गरिमा के दर्शन होते हैं । ओशो के भी कुछ पत्रों का संकलन हुआ है , जो निम्नलिखित ग्रन्थों में संग्रहीत हैं : — क्रांति-बीज , पथ के प्रदीप , अंतर्वीणा तथा प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल ।

साक्षात्कार :

साक्षात्कार या प्रश्नोत्तर के रूप में भी ओशो का काफी साहित्य उपलब्ध होता है । नहिं राम बिन ठांव , प्रेम-पंथ ऐसो कठिन , उत्सव आमार जाति आनंद आमार गोत्र , रहिमन धागा प्रेम का , सुमिरन मेरा हरि करै , साहेब मिल साहेब भये , ज्यूं था त्यू ठहराया , दीपक बारा नाम का , पीवत रामरस लगी खुमारी, आपुई गयी हिराय , फिर पत्तों की पाजेब बजी , फिर अमरित की बूंद पड़ी , चल हंसा उस देस , कहा कहौं उस देस की , पंथ प्रेम को अटपटो आदि पुस्तकों में साक्षात्कार या प्रश्नोत्तर के रूप में ओशो-साहित्य उपलब्ध हुआ है । इनके अतिरिक्त "भारत के जलते प्रश्न" नामक ग्रन्थ में भी प्रश्नोत्तर के रूप में कहीं-कहीं कुछ समस्याओं को रखा गया है ।

बोध-कथा :

ओशो के समग्र साहित्य में अनेक बोधकथाएं उपलब्ध होती हैं । ओशो एक अच्छे वक्ता हैं और कई बार अपनी बात को भलीभांति समझाने के लिए बोधकथा का आश्रय लेते हैं । हम अपनी वृत्तियों को जितना ही ज्यादा दबाते हैं , वे वृत्तियां उतना ही ज्यादा उछलती हैं , इस सत्य की अभिव्यक्ति के लिए ओशो एक बोधकथा कहते हैं । उसमें एक व्यक्ति अनेक वर्षों के बाद अपने एक पुराने मित्र के यहां जाता है । उसकी हालत अच्छी नहीं है । उसके पास अच्छे कपड़े भी नहीं है । वह कई दिनों से नहाया भी नहीं है । मित्र अमीर है । पर उसको उस दिन दो-तीन जगह जाना था । वह मित्र को नहा-धोकर तैयार होने को कहता है , अपने कपड़े भी दे देता है और अपने साथ चलने को कहता है । नहा-धोकर अच्छे कपड़ों में उस गरीब व्यक्ति का व्यक्तित्व एकदम निखर उठता है और वह उस अमीर से भी अधिक प्रभावशाली दिखता है । तब वे

दोनों जहां-जहां जाते हैं , वह अमीर मित्र किसी-न-किसी तरह कपड़ों को बात बीच में लाता है , जैसे -- ये मेरे मित्र फलां फलां है , बड़े विद्वान हैं , हाल ही में आये हैं और रहे कपड़े सो मेरे हैं । आखिर वह मित्र इस बात से तंग आ जाता है तब वह कहता है कि तुम बीच में कपड़ों को क्यों लाते हो । तब एक जगह पर वह अमीर मित्र कहता है -- "और रहे कपड़े सो उनके अपने ही हैं । " मित्र फिर उसे कहता है कि अगर कपड़े मेरे ही हैं तो उसे कहने की क्या जरूरत थी । अब मैं तुम्हारे साथ नहीं आता । मैं घर जाता हूं । तब उस अमीर मित्र ने कहा कि बस अब एक और जगह जाना है और वहां मैं ऐसी कोई बात नहीं करूंगा । हस्बेमामूल मित्रxमेxx अमीर मित्र ने अपने मित्र का परिचय करवाया और अंत में जोड़ दिया -- "और रहे कपड़े सो न मेरे हैं न उनके हैं । "

यह कथा ओशो ने मानव-मन की विचित्रता बयान करने के लिए कही थी । मानव-मन ऐसा विचित्र है कि बरेxबरxx जिस बात के लिए उसे मना किया जाता है , वह किसी-न-किसी रूप में उसे करता ही है । ऐसी बोधकथाओं की एक पुस्तक "मिट्टी के दीये " नाम से संकलित है , जिसमें ओशो की कई ऐसी बोधकथाएं वर्णित हैं ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ओशो-साहित्य में कविता के अतिरिक्त हमें कई अन्य गद्य-रूप उपलब्ध होते हैं , जो साहित्यिक इयत्ता की दृष्टि से बड़े ही महत्वपूर्ण हैं । ओशो का शिल्प-पक्ष भी बड़ा ही पुष्ट एवं परिपक्व है ।

﴾3﴿ भाषिक-संरचना

इस शीर्षक के अन्तर्गत ओशो द्वारा प्रयुक्त भाषा के विविध आयामों पर विचार किया जायेगा । हालांकि ओशो की भाषा पर विचार

करना हो तो उसके लिए पूरे प्रबंध की आवश्यकता है । कुछ पृष्ठों में उसकी चर्चा करना कठिन है , तथापि उनकी भाषा के कतिपय पक्षों पर यहां विमर्श करने का एक नम्र प्रयास किया गया है ।

शब्द-विचार :

शब्द भाषा की सबसे छोटी सार्थक ईकाई है । साहित्य में शब्द और अर्थ की अभिन्नता को सराहा गया है । शब्द और अर्थ जल-वीचि के समान होते हैं । भामह ने कहा है — "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् " — अर्थात् काव्य या साहित्य में शब्द और अर्थ साथ-साथ चलते हैं । साथ-साथ चलने का अभिप्राय यह है कि भाव के अनुरूप शब्दों का प्रयोग होगा । जैसा भाव वैसे शब्द । इस संबंध में ओशो ने कबीर के आदर्श को ही सामने रखा है । जहां जैसा शब्द ठीक लगा , उसका प्रयोग किया । वे शब्दों के पीछे नहीं भागे हैं , शब्द उनके पीछे भागे हैं । कबीर को भाषा का डीक्टेटर कहा गया है । उनकी भाषा में कई भाषा के शब्द मिलते हैं — ब्रज , अवधी, भोजपुरी , राजस्थानी , पंजाबी , खड़ीबोली , अरबी, फारसी । उन्होंने किसीसे अपना दामन बचाया नहीं है — हमन है इश्क मस्ताना , हमन को होशियारी क्या ? " तो दूसरी तरफ "झीनी झीनी बिनी चदरिया " । ओशो ने भी अनेक शब्दxx भाषाओं के शब्दों को लिया है । स्वयं "ओशो" शब्द भारतीय मूल का नहीं है । यह शब्द उन्होंने विलियम जेम्स के "ओशनिक" शब्द से निष्पन्न किया है , जिसका अर्थ होता है समुद्र में पिघल जाना , यह तो प्रतीकात्मक अर्थ होगा , सीधा अर्थ होगा उस अस्तित्व में मिल जाना , मिट जाना , स्वयं अस्तित्व हो जाना । उनकी पुस्तकों में यह टिप्पणी मिलती है : " भगवान श्री रजनीश अब केवल "ओशो " नाम से जाने जाते हैं । ... ओशो के अनुसार उनका नाम विलियम जेम्स के शब्द " ओशनिक " से लिया गया

है, जिसका अभिप्राय है सागर में विलीन हो जाना । "ओशनिक" से अनुभूति की व्याख्या तो होती है, लेकिन, वे कहते हैं अनुभोक्ता के संबंध में क्या ? उसके लिए "ओशो" शब्द का प्रयोग करते हैं । बाद में उन्हें पता चला कि ऐतिहासिक रूप से सुदूर पूर्व में भी "ओशो" शब्द प्रयुक्त होता रहा है, जिसका अर्थ×है× अभिप्राय है : भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति, जिस पर आकाश फूलों की वर्षा करता है ।" [9] ओशो अर्थात् " द ब्लेस्ड वन ओन हूम द स्काय शावर्स फ्लावर्स । " [10]

रसगंगाधरकार जगन्नाथ ने प्रतिभा को परिभाषित करते हुए कहा था कि " सा च काव्यघटनानुकूल शब्दार्थी उपस्थितः " अर्थात् प्रतिभा वह शक्ति है जिसके द्वारा घटनानुरूप शब्द अपने आप प्रस्फुटित होने लगते हैं । ओशो पर यह बात सौ फी सदी लागू होती है ।

भाषा के संदर्भ में मेरे निर्देशक प्रो. पारूकांत देसाई ने एक स्थान पर लिखा है : "और इसलिए अनिवार्यतः कवि गतानुगतिक भाषा का, शुद्ध भाषा का, पारंपरिक भाषा का अतिक्रमण करता है । वस्तुतः कवि तो भाषा के पिण्ड को रचता है और अगर वही बन्ध गया तो भाषा भी बंध जायेगी । इस संदर्भ में कबीर को याद किया जा सकता है । " [11]

कबीर और ओशो की भाषागत, शब्दगत प्रकृति एक-सी है । कबीर ने सभी प्रकार के शब्दों को लिया है, ओशो ने भी । परंतु ओशो बहुपठित होने के कारण उनमें संस्कृत के शब्द भी पुष्कल प्रमाण में मिलते हैं । संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं के कई शब्द भी मिलते हैं ।

भावानुरूप शब्दों के प्रयोग के संदर्भ में इसी अध्याय के पृ. 326 तथा 325 पर जो कविताएं दी गई हैं उनको लिया जा सकता है । पृ. 326 पर जो कविता है उसमें हिन्दी तथा संस्कृत के शब्दों की बहुलता है ;

जैसे — धरा , भाल , गगन , आलोक , निर्बन्ध , भव्यता , दिव्यता, कंटक , रागबंध , अकंपित , सुषमा , लावित्य , दिनमान , बांह , छांह , आंकना , टांकना , छिछला , ओछा आदि आदि । तो पृ. 325 पर जो नज्म है उसमें कई उर्दू के शब्द प्रयुक्त हुए हैं , जैसे — तबस्सुम , तरन्नुम , हिजाब , आरिज , शराब , दामन , उल्फत , हुस्न , तख्तो-ताज , रानाई , खिराज , नाज , मिजाज , खिरमन आदि आदि ।

ओशो का साहित्य तो एक विशाल-विराट महासागर है । अतः यहां केवल इनके एक-दो लेखों के आधार पर ओशो द्वारा प्रयुक्त शब्दों पर विचार किया गया है ।

संस्कृत-तत्सम शब्दावली का प्रयोग :स्वभाव-सिद्ध , आधारभूत , रूपांतरण, इन्द्रियां , प्रकृति , ध्वनि , अतीन्द्रिय ,क्षमता ,ध्यान , तादात्म्य , अहर्निश , प्रलोभित , अतृप्ति , बहिर्मुखी , अन्तर्मुखता , नरमेध , आत्म-वंचना , भावदशा ,पगध्वनि , द्रष्टा , समाधि-सम्राट , अभीप्सा , दर्पण , निस्पंद ।[12]

ठीक इसी प्रकार इसी लेख में कुछ उर्दू के शब्द भी मिल जाते हैं ; जैसे — मुश्किल , मामला , रोशनी , कमरा , दीवाल , तस्वीर , शक्ल , आईना , रेगिस्तान , मजा , मस्जिद ,कीमियागर , शक , दर्जा , कौड़ी , हाजी , कागज , धोखेबाज , मोहताज , सिर्फ , चाहत , सिजदा वक्त , फकीर , खबर , मजाक , लाश , बीमार , खयाल , नासमझ , लाइलाज , सरताज आदि आदि ।[13]

इसी प्रकार अनेक स्थानों पर तद्भव तथा देशज शब्द मिलते हैं , जैसे — ठीक , मछली , मछुआ , तालमेल , भिखारी , दस , घुटना , सांस , फैलाव , सपना , कमाई , ठीकरा , ढेर , सराबोर , भेड़ , गंडासा, बकरा , धूल-धंवास , कौड़ी-कंकड ,पोंछना , जोग , बैराग , आग ,

खोजी , पक्का , साधो , मवास , झोला , सन्नाटा । [14]

ओशो के वक्तव्य में कई बार अंग्रेजी के शब्द सहजतया उपलब्ध होते हैं ; जैसे --बीइंग [xxxx होना] , डूइंग , सडन एनलाइटन्मेण्ट, सैंक्शन , लाईसेंस , रेशनालाइज , इंस्ट्रूमेण्ट , सो व्हाट , मल्टि - डायमेन्शनल , सीक एण्ड यू लूज , डु नोट सीक एण्ड फाइण्ड , सीकिंग , वर्जिन , इनकंसिस्टेंसी , कोम्प्रीहेण्ड , इन-लोजिकल, इनफ्लुएंस , रिजोनेन्सेज [समध्वनियां] , क्रिमिनल , इम्पोसिबल एफर्ट , सिचुएशन , इगोलेस , टाइमलेस , आदि आदि । [15]

अभिप्राय यह कि ओशो की भाषा में तमाम प्रकार की भाषाओं के शब्द आये हैं । उन्होंने किसी शब्द से अपने को बचाया नहीं है , जहां जो शब्द ठीक लगा उसका वहां प्रयोग किया ।

सरलता :

सरलता ओशो की भाषा-शैली का एक सहज गुण है । वस्तुतः कठिन लिखना सरल होता है , परंतु सरल लिखना बड़ा ही कठिन होता है । भाषा और शब्दों पर जिसका अधिकार हो वही सरल भाषा लिख सकता है । संसार के बड़े-बड़े लेखकों की भाषा में सरलता का यह गुण पाया जाता है । हिन्दी में मुंशी प्रेमचन्द इसके ज्वलन्त उदाहरण समान हैं । मनुष्य और अस्तित्व के संबंध में देखिए कितनी सुंदर बात और कितनी सरलता के साथ ओशो कर रहे हैं :

"मनुष्य एक बूंद है , जिसके भीतर निर्वाण छिपा है । लेकिन बूंद जब तक सागर से न मिल जाये , निर्वाण प्रकट न हो सकेगा । मनुष्य खिले , तो उसमें से परमात्मा की सुगंध उठती है । और इसलिए जब तक तुम परमात्मा न हो जाओगे , तब तक कोई उपाय नहीं है सांत्वना का । कितना ही अपने को समझा लो , कितना ही अपने को उलझा लो , याद आती रहेगी । सब व्यवस्था को

तोड़-तोड़कर याद आती रहेगी कि तुम व्यर्थ कर रहे हो ; जो भी कर रहे हो , सब व्यर्थ है । यह कामधंधा , यह दुकानदारी , यह बाजार-व्यवसाय , यह सब ठीक है , लेकिन अभी असली काम तुमने नहीं किया । यह कचोट उठती रहेगी । यह घाव भीतर याद दिलाता रहेगा । और अच्छा है कि यह कचोट उठती रहे , यह कांटा चुभता रहे , क्योंकि यही कांटा चुभता रहे , तो शायद एक दिन तुम वह हो सको , जो होना तुम्हारी नियति है । " [16]

इसी प्रकार कबीर के "मो को कहां ढूंढे बन्दे " पद की व्याख्या करते हुए बड़े सरल शब्दों में ओशो कहते हैं : " परमात्मा प्रत्येक का स्वभाव-सिद्ध अधिकार है । उसे खोया होता तो तुम कभी पा नसकते थे । उसे खोया नहीं है , इसलिए पाने की संभावना है । और उसे खोया नहीं है , इसलिए खोज बड़ी मुश्किल है । जिसे खो दिया हो , उसे खोजने की संभावना बन जाती है । लेकिन जिसे खोया ही न हो , उसे तुम खोजोगे कैसे ? इसलिए परमात्मा पहेली बन जाता है । " [17]

ओशो की भाषा सरल है । छोटे-छोटे वाक्य । कई बार तो एक शब्द का भी वाक्य होता है । भाव होता है क्रिया नदारद । इस सरलता का एक कारण यह भी है कि ओशो की भाषा "पोथी-पढंति भाषा नहीं× " बल्कि " मुख-बोलन्ती" भाषा है और मौखिक भाषा पुस्तकीय भाषा से कुछ सरल तो रहेगी ही । दूसरे ओशो के वक्तव्यों में गहन-गंभीर चिंतन होता है और गहन-गंभीर चिंतन को अभिव्यक्त करने के लिए सरल भाषा को ही चुनना चाहिए । यही बुद्ध ने किया था , यही महावीर ने और यही क्राइस्ट ने किया था । गहन-गंभीर विचारों को अभिव्यक्त करनेवाली भाषा भी यदि वैसी हो जाये तो उसमें दुरूहता आ जाती है । विषय जितना गंभीर हो , भाषा उतनी ही सरल होनी चाहिए ।

काव्यात्मकता :

ओशो की भाषा अनेक बार काव्यात्मक हो जाती है । व्याख्यान देते हुए ओशो जब भावावेश में आ जाते हैं , तब उनके उन भावों को धारण करने के लिए भाषा भी काव्यात्मक हो जाती है । "आज जो कुछ भी कहूंगा मैं , होगा मये शायरी में डूबा हुआ ।" बिलकुल यही स्थिति होती है ओशो की उस समय । यहां एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

"सत्य एक है । और उस एक सत्य को पाकर प्रेम भी सत्य हो जाता है , धन भी सत्य हो जाता है , पद भी सत्य हो जाता है — सब सत्य हो जाता है । क्योंकि उस सत्य में तुम सराबोर तुम सत्य हो जाते हो । तुम जो छूते हो , वही सोना हो जाता है । तुम जहां पैर रखते हो , वहां मंदिर बन जाते हैं । तुम जहां चलते हो , वहीं तीर्थ हो जाता है । " [18]

प्रतीकात्मकता :

ऊपर निर्दिष्ट किया गया कि ओशो की भाषा काव्यात्मक होती है । अब यदि भाषा काव्यात्मक होगी तो उसमें प्रतीकात्मकता का समावेश तो होगा ही । प्रेम , भाव , विश्वास , भक्ति ये सब तर्कातीत होते हैं । तर्क से हम इस अस्तित्व को नहीं पा सकते । तर्क से हम अपने आपको नहीं पा सकते । तर्क तो बाह्य-जगत का विधान है । आंतरिक जगत का विधान , आंतरिक जगत का वैभव तर्क से नहीं पाया जा सकता । इसकी बात जहां ओशो करते हैं वहां उनकी शैली प्रतीकात्मकता की ओर प्रवाहित हो गई है । यथा —

"इसलिए मेरे वक्तव्य अतार्किक होंगे , इल-लोजिकल होंगे । और मैं यह कहना चाहूंगा कि जहां तक मेरे वक्तव्य में तर्क दिखाई पड़े

वहां तक समझना कि मैं सिर्फ विधि का उपयोग कर रहा हूं । जहां तक दिखाई पड़े वहां तक मैं सिर्फ इन्तजाम बिठा रहा हूं , साज जमा रहा हूं । गीत शुरू नहीं हुआ है । जहां से तर्क की रेखा छूटती है वहीं से मेरा असली गीत शुरू होता है । वहीं से साज बैठ गया और अब संगीत शुरू होगा । लेकिन जो साज के बिठाने को संगीत समझ लेंगे उनकी बड़ी कठिनाई होगी । वे मुझसे कहेंगे कि यह क्या मामला है ? पहले तो हथौड़ी लेकर तबला ठोंकते थे , अब हथौड़ी क्यों रख देते हैं ? हथौड़ी से तबला ठोंक रहा था , वह कोई तबले का बजाना नहीं था । वह सिर्फ इसलिए था कि तबला बजने की स्थिति में आ जाए , फिर तो हथौड़ी बेकार है । हथौड़ी से कहीं तबले बजते हैं ? तो तर्क मेरे लिए सिर्फ तैयारी है अतर्क के लिए । और यही मेरी कठिनाई हो जाती है कि जो मेरे तर्क से राजी होकर चलेगा वह थोड़ी ही देर में पायेगा कि मैं कहीं उसे अंधेरे में ले जा रहा हूं । क्योंकि जहां तक तर्क दिखाई पड़ेगा वहां तक प्रकाश है , साफ-सुथरी हैं चीजें ; लेकिन उसे लगेगा कि मैंने सिर्फ प्रकाश का प्रलोभन दिया था और अब तो मैं अंधेरे में सरकने की बात करने लगा । " 19

उपर्युक्त परिच्छेद में गीत , संगीत , हथौड़ी , तबला , प्रकाश , अंधेरा इन सभी शब्दों के प्रतीकात्मक अर्थ हैं । यहां हथौड़ी शब्द तर्क का प्रतीक है । गीत -संगीत भक्ति और विश्वास और ध्यान का प्रतीक है । प्रकाश जागतिक व्यवहार का प्रतीक है । अंधेरा रहस्यमयता का प्रतीक है ।

ईश्वर को खोजने और पाने के लिए जो बाह्य विधि-विधान होते हैं वे सब व्यर्थ हैं ; उसकी व्याख्या करते हुए ओशो प्रतीकों की भाषा में उतर पड़ते हैं :

"तो क्रिया तो गौण है , बाहर है ; होना भीतर है , मूल है ।

होकर ही कोई परमात्मा को पाता है । कर-करके कुछ भी नहीं कोई पा सकता । क्रिया से होना बड़ा है । क्योंकि सब क्रियाएं होने से निकलती हैं । .... करना तो पत्तों की तरह है — निकलते चले जाते हैं । होना जड़ की तरह है । जड़ को ही खोजो । पत्ते-पत्ते बहुत खोजा , बहुत भटके । पत्ते अनंत हैं — और भटकते रहोगे । जड़ को पकड़ लो । व्यक्तित्व की जड़ कहां है ? — कर्म में नहीं , क्रिया में नहीं , सिर्फ होने मात्र में । विचार भी क्रिया है । हाथ से कुछ करो , वह भी क्रिया है ; मन से कुछ करो , वह भी क्रिया है । जब सब क्रिया शांत हो जाती हैं — न हाथ कुछ करते हैं , न मन कुछ करता है ; जब तुम बस हो ; सब ठहर गया , कोई गति नहीं है , कोई तरंग नहीं है — अचानक , अचानक सब मौजूद हो जाता है जिसकी तुम तलाश कर रहे थे ; आनंद और प्रेम और परमात्मा सब बरस जाता है । " 20

तार्किकता :

ओशो की भाषा में तार्किकता का गुण मिलता है । यह हम अनेक स्थानों पर देख गये हैं कि ओशो शुरू से ही खूब तर्क करते थे , खूब प्रश्न करते थे । क्योंकि वे असाधारण बुद्धिमत्ता के मालिक थे । अतः वे हमेशा से एक अद्भुत वक्ता रहे हैं । धीरे-धीरे उनकी वाणी का जादू देश-विदेशों में फैल गया । उनका समग्र साहित्य इस तार्किकता के अभिलक्षण से अभिमंडित है , यहां केवल दो-तीन उदाहरण दिये जा रहे हैं :

"तुम जागो थोड़े । जो भी तुम कर रहे हो — धन कमा रहे हो , पद कमा रहे हो , यश कमा रहे हो — थोड़ा जागो । थोड़ा जागकर देखो , क्या कर रहे हो ? ठीकरों पर जीवन को गंवा रहे हो । कंकड़-पत्थर बीन रहे हो । सब पड़ा रह जाएगा । मौत द्वार पर दस्तक देगी — तुमने जो कमाया , सब पड़ा रह

जाएगा । इसको तुम कसौटी बना लो । मौत के साथ जो यहीं छोड़ देना पड़ेगा , मौत के आने पर वह कमाना नहीं गंवाना है । जो तुम मौत के भीतर भी साथ ले जाओगे , वही कमाई है । इसको तुम मापदण्ड बना लो । " [21]

समाधि की आत्म-निर्भरता की बात करते हुए ओशो अपने तर्क देते हैं : " समाधि तुम्हारा निर्णय है , उसमें दूसरा है ही नहीं जिससे पूछना हो । अगर दूसरे से पूछना हो तो फिर थोड़ी देर लग सकती है । अगर दूसरे का सहारा लेना हो तो , फिर थोड़ी देर लग सकती है । ... लेकिन समाधि तुम्हारा शुद्ध निर्णय है । समाधि एक मात्र घटना है जगत में जो तुम्हारे अकेले होने से घट सकती है । जिसके लिए दूसरे की जरूरत नहीं है । सभी घटनाओं में दूसरे की जरूरत है । प्रेम तक के लिए दूसरे की जरूरत है । दूसरा न हो तो कैसे प्रेम घटेगा । इसलिए प्रेम भी निर्भर है , मोहताज है । अकेली समाधि एकमात्र घटना है जो मोहताज नहीं हैं , जो भिखारी नहीं है । अकेली समाधि सम्राट है । तुम जिस क्षण चाहो , तुम ही न चाहो — तुम्हारी मर्जी ; तुम कई बार सोचते हो कि तुम चाहते हो और घटती नहीं है , तुम गलत सोचते हो । तुम चाहते नहीं , नहीं तो घटेगी ही । वह नियम है । उस नियम में कोई रूपांतरण नहीं हुआ है । कभी नहीं होगा ।" [22]

व्यंग्यात्मकता :

ओशो का व्यक्तित्व एक विद्रोही व्यक्तित्व रहा है । ताजिन्दगी वे मुर्दारूढ़ियों , मुर्दा परंपराओं , मुर्दा संप्रदायों पर करारे प्रहार करते रहे हैं और इन सबमें व्यंग्य का उपयोग उन्होंने एक औजार के रूप में किया है । जबलपुर ने हमें दो अच्छे व्यंग्यकार दिए हैं — एक ओशो और दूसरे हरिशंकर परसाई । दोनों की तुलना कबीर से होती रही है , परंतु ओशो का फलक कबीर और परसाई इन दोनों से

अधिक व्यापक रहा है । ओशो-साहित्य में हमें स्थान-स्थान पर व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं । कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

मनुष्य की नकली धार्मिकता पर चोट करते हुए ओशो कहते हैं : "मनुष्य ने कितने-कितने उपाय किए हैं कि परमात्मा को बाहर खोज ले ; कभी मंदिर की मूर्ति के सामने धूप जलाई है , दीप जलाए हैं , कभी मंदिर की मूर्ति के सामने बलिदान दिए हैं -- भेड़ , बकरी , आदमियों के भी , नरमेध यज्ञ भी आदमियों के किए हैं । लेकिन बकरी को , भेड़ को या आदमी को काट डालने से कैसे तुम परमात्मा पा लोगे ? बड़े सस्ते में पाने चले हो -- एक बकरी काट दी , कि एक भेड़ काट दी , किसको धोखा दे रहे हो ? अपने को काटे बिना कोई कभी परमात्मा को नहीं पा सकता । लेकिन आदमी अपने को बचाता है और किसी दूसरे को चढ़ाता है । "[23]

" लोग पूछते हैं , मोक्ष कहां है , और मंदिरों में नक्शे भी टंगे हैं कि ऐसा-ऐसा जाओ फिर यहां ये-ये सीढ़ियां पड़ेंगी और ये-ये द्वार मिलेंगे । और नीचे नरक है और ऊपर स्वर्ग है और सबके ऊपर मोक्ष है । "[24]

छद्म-धार्मिकता पर व्यंग्य करते हुए ओशो कहते हैं : " ध्यान रहे , धर्म को कोई भी संसार में से छुट्टी निकालकर नहीं कर सकता । धर्म तो जब होता है , तब तुम्हारे चौबीस घण्टे धर्म में बहने लगते हैं । धर्म कुछ ऐसा नहीं है कि पन्द्रह मिनट कर लिया और बाकी फिर पौने चौबीस घण्टे मजे से अधर्म किया । धर्म खण्ड-खण्ड नहीं हो सकता । धर्म तो सांस की तरह है -- जब तक चौबीस घण्टे न चले , तब तक उसका कोई सार नहीं है । तो तुम गए तीर्थ , दो दिन भजन-कीर्तन में रस लिया , थोड़ा दान-पुण्य किया , फिर घर आकर उसी पुरानी दुनिया में संलग्न हो गए -- और

जोर से, क्योंकि वह चार दिन जो नुकसान हुआ, वह भी पूरा तो करना ही पड़ेगा । तो अगर जेब एक काटते थे तो दो काटने लगे । और फिर अगले दफा जाना है तीर्थयात्रा पर, तो उसके लिए भी तो पैसे इकट्ठे करना पड़ेगा । मंदिर हो आते हो, — ऐसा लगता है कि जैसे तुम परमात्मा पर कुछ अहसान कर रहे हो । क्योंकि मंदिर से जब तुम लौटते हो तो बड़े अकड़कर लौटते हो — फिर कर आए एक अहसान । और कुछ विनम्र नहीं होते मंदिर से, तीर्थ से लौटकर विनम्र नहीं होते । जो आदमी हज हो आता है, वह "हाजी" हो जाता है । उसकी अकड़ देखो । यह तरकीब है, बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने की । " 25

सूर्पनखा के साथ राम-लक्ष्मण ने जो अभद्र व्यवहार किया उसकी कटु आलोचना करते हुए ओशो व्यंग्यात्मक भाषा में कहते हैं : "क्या-क्या खेल हो रहे थे । और रावण तो बुरा आदमी था, मान लेते हैं कि बुरा आदमी था, जैसा कि कहानियां कहती हैं । भगा ले गया होगा । राम तो भले आदमी थे । लक्ष्मण तो भले आदमी थे । सूर्पनखा ने, रावण की बहन ने लक्ष्मण से निवेदन किया कि मुझसे विवाह करो । आव देखा न ताव । बड़े भैया की आज्ञा ली कि काट दूं इसकी नाक ? और बड़े भैया बोले, हां । यह कोई बात हुई, कोई शिष्टाचार हुआ, कि हेमामालिनी तुम्हें मिल जाये और कहे कि मुझे आप से विवाह करना है, और तुम उसकी नाक काट लो ? नहीं करना था, कह देते, नहीं करना कि बाई माफ कर, कि मैं पहले से विवाहित हूं । नाक काटने का सवाल ही कहां उठता है ? और रामचन्द्रजी भी स्वीकृति दे दिये कि हां, मत चूक चौहान । ऐसा शुभ अवसर मत चूक । " 26

एक स्थान पर हिन्दुओं के विभिन्न संस्कारों की खिल्ली उड़ाते हुए गर्भ-धारण संस्कार की बात चलाते हैं । प्राचीन समय में जो पुत्रेष्टि-यज्ञ वगैरह होते थे और उसमें धर्म के नाम पर अश्लीलता

और नंगेपन का नग्न नाच होता था : " क्या गजब के लोग थे, क्या तरकीबें निकालीं । स्त्री-पुरुष संभोग करें, चार महात्मा चार दिशाओं में खड़े हों, और महात्माओं के हिसाब से संभोग चलेगा । महात्मा मंत्र पढ़ेंगे, स्त्री के एक-एक अंग को छूकर वे मंत्र पढ़ेंगे, और मंत्रों के हिसाब से संभोग चलेगा । यह तो जालसाजी हुई । अरे, तुम्हें किसी स्त्री को नग्न देखना था तो देख लेते, कौन मना करता था, मगर यूं धर्म का आडम्बर क्यों खड़ा करना ? भाग गये संसार को छोड़कर महात्मा बनकर बैठे हो, और अब संसार को पीछे के रास्ते से वापिस ला रहे हो । कम से कम इतनी तो ईमानदारी होनी चाहिए कि अपने जीवन को जैसा है, वैसा स्वीकार करो । भगोड़ों के जीवन में ये बातें आ जायेंगी । अब उस स्त्री की क्या दशा होती होगी, यह भी तो सोचो । उस पर मंत्र-तंत्र पढ़े जा रहे हैं, यज्ञ-हवन किया जा रहा है । " 27

हास्य-प्रधानता :

ओशो "उत्सव आमार जाति आनंद आमार गोत्र " सूत्र में मानते हैं, और जो इस सूत्र में मानता हो, वह भला हास्य से दूर कैसे रह सकता है । तो ओशो खूब हंसते थे और खूब हंसाते थे । उनकी भाषा-शैली में भी यह लक्षण दृष्टिगोचर होता है । अपनी बात को समझाने के लिए जो उदाहरण ओशो प्रस्तुत करते हैं उसमें हास्य का पुट होता है । महात्मा गांधी का हथियार आमरण अनशन कितना हिंसक और खतरनाक हो सकता है उस पर ओशो की एक कहानी मिलती है । उसमें एक व्यक्ति दूसरे की खूबसूरत विवाहिता पत्नी को प्राप्त करने के लिए आमरण अनशन का सहारा लेता है । उसका पक्ष यह था कि वह स्त्री पूर्वजन्म में एक ऋषिपत्नी थी और वह ऋषि वह स्वयं था । लोगों ने उसे बहुत समझाया पर वह टस से मस नहीं हो रहा था, आखिरकार एक बुजुर्गवार ने उस स्त्री के पति को एक रास्ता सुझाया ।

दूसरे दिन एक बूढ़ी वेश्या उस व्यक्ति के पास ही जाकर अनशन पर बैठ गई कि यह अनशन करने वाला व्यक्ति मेरे पूर्वजन्म का पति है, अतः जब तक वह मुझे अपना नहीं लेता, मैं आमरण अनशन करूंगी। उसी दिन रात को वह व्यक्ति नौ दो ग्यारह हो गया। ऐसी तो ढेरों कहानियां हमें ओशो में मिलती हैं जो हमें हंसाती हैं, गुदगुदाती हैं। ओशो ने हास्य की सृष्टि के लिए मुल्ला नसरूद्दीन के चरित्र का निर्माण किया है। जहां भी कोई हास्य की बात डालनी हो ओशो मुल्ला नसरूद्दीन को ले आते हैं।

जीवन की इस गति का, नियति का, लीला का, खेल का, स्वप्निल-प्रवाह का बोध व्यक्ति को एक हल्केपन से, एक तरलता से और एक अरूप रहस्यता से भर जाता है। फिर इस खेल में खेलना होता है, बहना होता है, सहज जीना होता है। (और तब) न कोई आधार रह जाता — चिंता के लिए, न कोई कारण रह जाता — गंभीरता के लिए, न कोई सहारा रह जाता — पकड़ने के लिए, न कोई ■■ सीमा रह जाती — बंधने के लिए, न कोई मित्र रह जाता, न कोई दुश्मन — न राग के लिए, न द्वेष के लिए। .... तब व्यक्ति गुजरता है जीवन से, लेकिन हल्का-फुल्का, नाचता-गाता, जीवन को उसके विविध रंगों में निरखता। ... हमारा मुल्ला नसरूद्दीन अपने में सबकुछ समाये हुए है। • 28

एक अर्थी जा रही थी। पीछे-पीछे कई लोग जा रहे थे। अर्थी के आगे एक आदमी कुत्ते को थामे चल रहा था। एक व्यक्ति ने यह दृश्य देखा। उसे पूछने का मन हुआ। उसने उस मरी हुई स्त्री के पति से पूछा कि भाई साहब आप आगे-आगे यह कुत्ता लेकर क्यों चल रहे हैं। उसने बताया कि यह मेरा मुक्तिदाता है। उसके काटने से यह मरी है। आगन्तुक ने कहा कि भाईसाहब तब तो यह कुत्ता आप मुझे दे दीजिए। अब उसकी जरूरत मुझे है, आपको नहीं। उसने कहा कि तुम ठीक कहते हो, पर उसके लिए तुम्हें सबसे आखिर में

जाना पड़ेगा , क्योंकि ये सभी लोग इसी कुत्ते के लिए आ रहे हैं । यह कहानी ओशो प्रायः मुल्ला के संदर्भ में सुनाते रहे हैं । यहां मुल्ला के ऐसे ही एक-दो प्रसंग प्रस्तुत कर रहे हैं । ओशो-साहित्य में ऐसे जो प्रसंग आये हैं , उन्हें "मुल्ला नसरूद्दीन " नामक पुस्तक में संगृहीत किए गए हैं ।

मैके से वापस आ रही पत्नी को मुल्ला स्टेशन पर लेने पहुंचे । पत्नी उतरी तो मुल्ला ने सब सामान ठीकठाक रखवाया और फिर पूछा -- "सब ठीकठाक तो है ? " बीबी मुल्ला पर बिगड़कर कहने लगी कि देखो एक वे भी पति-पत्नी हैं , जो कितने प्यार से मिल रहे हैं । पति पत्नी को आलिंगन दे रहा है और एक तुम हो कि आते ही ऐसी रूखी-सूखी बातें शुरू कर दीं । मुल्ला ने कहा -- " लेकिन यह पति अपनी पत्नी को लिवाने नहीं , स्टेशन पहुंचाने आया है । " 29

मुल्ला नसरूद्दीन ने एक बार एक पार्टी में मनोविज्ञान के एक प्रोफेसर से पूछा कि प्रोफेसर साहब किसी व्यक्ति में बुद्धि है कि नहीं वह कैसे मालूम करना चाहिए । प्रोफेसर साहब ने बताया कि बड़ा आसान सा तरीका है । आप उसे पूछिये -- कर्नल बर्ड ने पृथ्वी की तीन परिक्रमाएं लेते हुए तीन उड़ानें ली थी , उनमें से किसी एक उड़ान में उनकी मृत्यु हुई थी , बताइये कि वह उड़ान कौन-सी थी ? मुल्ला [redacted] तपाक से बोल उठे -- " यह तो मुझे भी नहीं मालूम कि कर्नल बर्ड की मृत्यु कौन-सी उड़ान में हुई थी , क्योंकि मैंने इतिहास नहीं पढ़ा है । " 30

इस प्रकार की ढेरों कहानियां ओशो ने इस चरित्र के आसपास बुनी है कि यह भी एक अंतरराष्ट्रीय चरित्र हो गया है । अंत में एक छोटे-से हास्य-प्रसंग के द्वारा इस टापिक की समाप्ति करते हैं । एक रोगी मुल्ला को पूछता है कि "मुल्ला , ठीक-ठीक बताओ , मेरे ठीक होने की कितनी संभावना है ? " मुल्ला ने जवाब दिया -- "शत-प्रतिशत" । रोगी ने कहा -- " तुम ऐसा कैसे कह सकते हो ? "

मुल्ला ने कहा — " आंकड़ों से पता चला है कि इस रोग में दश में से नौ मर जाते हैं । मेरे इलाज से पहले नौ रोगी इस रोग से मर गये हैं । तुम दशवें हो । " 31

दृष्टांत-शैली :

ओशो एक चिंतक हैं, विचारक हैं, एक अच्छे वक्ता हैं और इन सबके होने में उनकी दृष्टांत-शैली का बड़ा ही योगदान रहा है । वे बात-बात में दृष्टांत देते चलते हैं और गहन से गहन, गंभीर से गंभीर, गहरी से गहरी बात एकदम सरल हो जाती है । यहां एक-दो उदाहरणों के द्वारा इसे स्पष्ट करने का उपक्रम है ।

ईश्वर तो अन्तर्यामी है । घट-घट व्यापी है । अतः उसकी प्रार्थना भी मौन होनी चाहिए । तुम्हारा समूचा अस्तित्व उसकी प्रार्थना होना चाहिए । इस बात को ओशो एक दृष्टांत के द्वारा स्पष्ट करते हैं :

"एक भिखारी एक सम्राट के द्वार पर खड़ा था । सम्राट ने उसे देखा और लाकर धन-संपत्ति से उसकी झोली भर दी । उसने कुछ कहा नहीं । और देखनेवाले चकित हुए । उन्होंने उस भिखारी को, जब सम्राट वापस चला गया भीतर महल के, पूछा । उसने कहा, " कहने को क्या है ? मेरा पूरा होना ही कह रहा है ; देखो मेरे फटे चिथड़े, मेरी दीन आँखें, मेरी दुर्बल देह, मेरे चेहरे पर लिखी हुई असफलता की कथा । अब और कहने को क्या है ? मैं सिर्फ खड़ा हो गया वहां । सम्राट ने मुझे देखा । बात खत्म हो गई । कहने को क्या है ? और अगर सम्राट अंधा हो और अगर देख न सके तो कहने से भी क्या होगा ? " 32

कितनी बड़ी बात कह दी । ईश्वर रूपी सम्राट को भी कुछ कहने की जरूरत नहीं है । बस हमें स्वयं प्रार्थना बन जाना है । हमारे रोम-

रोम से प्रार्थना फूटनी चाहिए ।

हमारे यहां लोग कहते हैं कि देश में चरित्र-संकट पैदा हो गया है, अतः जब तक यह चरित्रहीनता रहेगी देश की दरिद्रता दूर नहीं हो सकती । ओशो इसके विपरीत यह कहते हैं कि हमारे देश की चरित्र-हीनता के मूल में दरिद्रता है, विपन्नता है, गरीबी है । इस बात को समझाने के लिए वे एक दृष्टांत देते हैं :

"एक मजिस्ट्रेट मेरे पास बैठे थे । वे कह रहे थे कि वे रिश्वत नहीं लेते हैं । मैंने उनसे कहा, मैं पूछना चाहता हूं कि आपके रिश्वत न लेने की आखिरी सीमा क्या है ? उन्होंने कहा, मैं समझा नहीं । मैंने कहा, मैं आपको पांच नये पैसे की रिश्वत दूं, आप लोगे ? उन्होंने कहा, आप भी किस पागलपन की बात कर रहे हैं । मैंने कहा, पांच रुपये ? तो उन्होंने कहा, नहीं । मैंने कहा, पांच सौ रुपये ? उन्होंने कहा, नहीं लूंगा, लेकिन xxxx उनकी "नहीं" इस बार कमजोर मालूम पड़ी । मैंने कहा, पांच हजार रुपये ? तो उन्होंने कहा, लेकिन क्या मतलब है आपका ? यह पूछने का क्या प्रयोजन है ? अब की बार उन्होंने xxxx " नहीं" नहीं कहा । मैंने कहा, और पांच लाख रुपये ? उन्होंने कहा, सोचना पड़ेगा । चरित्रहीनता का क्या मतलब होता है ? पांच नये पैसे रिश्वत न लेते तो चरित्रवान हो गये और लाख की रिश्वत ले तो चरित्रहीन ? नहीं साहब, आदमी की सीमा है । पांच नये पैसे उसके पास बहुत हैं । अभी वह चरित्रवान रह सकता है । कह सकता है, न लेंगे । और पांच सौ रुपये, तब एक दफे सवाल उठता है कि नहीं लेना, कि लेना । चरित्र के लिए पांच सौ खो सकता है, क्योंकि उसके पास पांच सौ से ज्यादा है, लेकिन जब पांच लाख का प्रश्न उठा ? तब वह कहता है कि अब जरा चरित्र महंगा पड़ जायेगा । अभी पांच

लाभ ले लेंगे , चरित्र को फिर संभाल लेंगे । •33

ओशो की अधिकांश लघुकथाएं इस दृष्टांत-शैली के कारण ही है । यह ध्यातव्य रहे कि प्रत्येक अच्छा वक्ता दृष्टांत-शैली को अपने-आप में विकसित करता ही है ।

<u>व्यास-शैली :</u>

"व्यास" शब्द का अर्थ होता है फैलाव । गणित में वर्तुल के केन्द्र से पास होने वाली और परिध के दोनों बिन्दुओं को छेदने वाली रेखा को व्यास कहते हैं । वर्तुल मानो कोई समस्या , प्रश्न या विषय है । केन्द्र उसका मुख्य सूत्र है । केन्द्र में होते हुए वर्तुल के ×××× परिध के दोनों छोरों का स्पर्श करना है , अभिप्राय यह कि उस प्रश्न को , उस समस्या को , उस विषय को पूरे विस्तार के साथ आरपार देखना है । अतः व्यासशैली में विचार-सूत्र को — केन्द्र को —— केन्द्र में रखते हुए उसके नाना पहलुओं पर विभिन्न ढंग से , नाना उदाहरणों के द्वारा समझाने का प्रयास रहता है । व्यास का अभिप्राय ही विस्तार होता है । कई बार परीक्षाओं में विचार-विस्तार के प्रश्न रहते हैं । वहां पर जो पंक्तियां दी गयी हैं उनको तरह-तरह से समझाया जाता है । यह विचार-विस्तार का प्रश्न एक प्रकार से व्यास-शैली जैसा ही है । चिंतकों को , दार्शनिकों को , विचारकों को , धर्म-उपदेशकों को , अध्यापकों को , वक्ताओं को इस शैली की विशेष आवश्यकता रहती है ; क्योंकि पहले वे सूत्र रूप में कोई विचार रखते हैं और फिर अनेकानेक उदाहरणों द्वारा उसे प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं । व्यास-शैली में कई बार अपने वक्तव्य को प्रभावित ××××× बनाने के लिए समानार्थक शब्दों का दोहराव भी होता है , जैसे गहन -गंभीर-गहरा । वक्ता इन तीनों शब्दों का प्रयोग करेगा , इसका अर्थ यह कतई नहीं कि उसे भाषा-ज्ञान नहीं है , परंतु अपने कथन को अधिक प्रभावशाली बनाने

हेतु वह कई बार ऐसा करता है । ओशो में अनेक स्थानों पर हमें इस शैली के दर्शन होते हैं । यहां एक-दो उदाहरणों को देकर उसे सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है ।

अगस्त 1997 के "ओशो टाइम्स" में "ताओ उपनिषद" भाग-6 से एक छोटा-सा लेख लिया गया है — " भरपूर रस लो जीवन का " । इसके प्रारंभ में ही लाओत्से का एक छोटा-सा कथन दिया गया है — " लोग अपने भोजन में रस लें । अपनी पोशाक सुंदर बनाएं । अपने घरों से संतुष्ट रहें । अपने रीति-रिवाज का मजा लें । " [34]

और फिर उसे पूरे लेख में इसी बात को विस्तार से समझाया गया है । "सुनो भाई साधो" में कबीर के पदों को लेकर उनकी व्याख्या की गई है । यहां पर भी ओशो की इस शैली के दर्शन होते हैं ।

"मो को कहां ढूंढे रे बन्दे " की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं — "जो भीतर है , उसे पाना मुश्किल हो जाता है । " तो उन्होंने एक सूत्र दिया कि जो भीतर है उसे पाना मुश्किल है । अब उसे वे यों समझा रहे हैं : "क्योंकि सारी इन्द्रियां बाहर खुली हैं । आंख बाहर देखती है ; हाथ बाहर छूते हैं ; कान बाहर की आवाज सुनते हैं ; नासापुट बाहर की गंध लेते हैं — सारी इन्द्रियां बाहर की तरफ खुलती हैं । क्योंकि , इन्द्रियां प्रकृति का हिस्सा है , प्रकृति से जुड़ी हैं । प्रकृति बाहर है , परमात्मा भीतर है । और प्रकृति से जोड़ने के लिए इन्द्रियों की जरूरत है । इन्द्रियां न हों तो तुम्हारा प्रकृति से संबंध छूट जायेगा । अंधे आदमी का क्या संबंध है प्रकाश से ? बहरे का क्या संबंध है संगीत से ? ध्वनि से ? शब्द से ? इन्द्रियां न हों तो प्रकृति से संबंध छूट जायेगा । " [35]

यह व्यास-शैली का एक अच्छा उदाहरण है । "सारी इन्द्रियां बाहर खुली हैं " यह कह दिया ; फिर आंख , कान , नाक को लेकर कहने

लगे ; ठीक उसी प्रकार एक बार कह दिया कि " इन्द्रियां न हों तो प्रकृति से संबंध छूट जायेगा " , लेकिन फिर इसी बात को ब्यौरेवार समझाने के लिए वे आंख , कान आदि की बात करते हैं । इस प्रकार ओशो का समग्र साहित्य एक प्रकार से देखा जाये तो व्यास-शैली के उदाहरण-स्वरूप है ।

समास-शैली :

यह व्यास-शैली का विलोम है । इसमें कोई बात सूत्र-रूप में कही जाती है । प्रबंधकार में व्यासशैली मिलती है , मुक्तककार मेंसमास-शैली दृष्टिगोचर होती है । उसमें भाषा की समासशक्ति तथा कल्पना की समाहार xxx शक्ति का परिचय मिलता है । ओशो जहां सूत्र-रूप में कोई बात रखते हैं , या व्याख्यान के अंत में निष्कर्ष के रूप में पूरे व्याख्यान का निचोड़ रखना चाहते हैं , वहां इस शैली के दर्शन होते हैं । उदाहरणतया निम्नलिखित वक्तव्य देखिये :—

"मैं तुम्हें एक अखंड दृष्टि देना चाहता हूं , जिसमें कुछ भी निषेध नहीं है । मैं तुम्हें एक विधायक धर्म देना चाहता हूं , जिसमें संसार को भी आत्मसात करने की क्षमता है ; जिसकी छाती बड़ी है ; जो संसार को भी पी सकता है और फिर भी जिसका संन्यास खंडित नहीं होगा ; जो बीच बाजार में संन्यस्त हो सकता है ; जो घर में रहकर अगृही हो सकता है ; जो संसार में होकर भी संसार का नहीं होता । " 36

विश्लेषणात्मक-शैली :

व्याख्यान में , चिंतन में कई बार विश्लेषण की आवश्यकता रहती है । खासकर जहां दो वस्तुओं या विषयों की तुलना करनी हो या उनके बीच के अंतर को स्पष्ट करना हो वहां इसकी xxxx आवश्यकता रहती है । ओशो-साहित्य में कई बार ऐसे प्रसंग आते हैं , जहां

विश्लेषण की आवश्यकता रहती है । यहां एक उदाहरण के द्वारा इस बात को स्पष्ट किया जायेगा । एक स्थान पर ओशो समाजवाद और पूंजीवाद की बात करते हुए कहते हैं :

"समाजवाद का अर्थ है, राज्य-पूंजीवाद -- स्टेट-कैपिटालिज्म । समाजवाद का अर्थ है, संपत्ति व्यक्तियों के पास न हो, संपत्ति की मालकियत राज्य के पास हो । लेकिन समाजवाद यह नहीं कहता कि वह राज्य-पूंजीवाद है । वह कहता है, वह पूंजीवाद का विरोधी है । यह बात झूठ है । समाजवाद पूंजीवाद का विरोधी नहीं है । समाजवाद, जो पूंजी की सत्ता बहुत लोगों में वितरित है, उसे राज्य में केन्द्रित कर देना चाहता है । और व्यक्तियों के हाथ में जब पूंजीवाद इतना नुकसान पहुंचाता है, तो राज्य के हाथ में कितना नुकसान पहुंचायेगा इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है । इसलिए समाजवाद का दूसरा अर्थ है, गुलामी की, दासता की एक व्यवस्था । समाजवाद का अर्थ है, राज्य मालिक हो जाये और समाज के सारे लोग गुलाम और दास की हैसियत से जियें । असल में पूंजीवाद ने पहली बार व्यक्ति को हैसियत और स्थिति दी । समाजवाद का मतलब है, सामंतवाद वापस लौट आये । इतना ही फर्क होगा कि जहां राजा थे वहां राजनीतिज्ञ होंगे । राजाओं के हाथ में इतनी ताकत कभी न थी जितनी समाजवाद राजनीतिज्ञ को दे देगा ।" [37]

धाराशैली :

जहां किसी विषय का निरूपण करते हुए ओशो उसमें डूबने लगते हैं, उसमें बहने लगते हैं, उसमें लवलीन हो जाते हैं तब धाराशैली के दर्शन होते हैं । यथा --

"क्योंकि जिसने तुम्हें बनाया है, जिससे तुम पैदा हुए हो, जिससे तुम आये हो -- उसे तुम अब भी अपने भीतर लिए हुए हो ; क्योंकि

उसके बिना तो तुम जी ही नहीं सकते । "सब सांसों की सांस में " । तुम्हारी हर सांस में वही सांस ले रहा है । तुम्हारी हर धड़कन में उसी की धड़कन है । तुम्हारी हर कंपन में उसीका कंपन है । तुम्हारे होने में उसीका होना है । " 38

एक दूसरा उदाहरण देखिए : " न तो मैं देवल में हूं , न मस्जिद में हूं , न काबे में हूं , न कैलाश में हूं । परमात्मा तुम्हारे भीतर है । तुम परमात्मा हो । तुम्हारा होना ही परमात्मा का होना है । तुम परमात्मा का एक रूप हो । तुम परमात्मा की एक लहर , एक xxxx तरंग हो । तुम परमात्मा की एक भावदशा हो । तुम परमात्मा का एक संगठन हो । तुम एक इकाई हो । वह होगा सूरज , तो तुम एक छोटे दीये हो , लेकिन आग वही है । वह होगा विराट , वह होगा महासागर , तुम एक बूंद हो ; लेकिन एक बूंद में पूरा सागर छिपा है । और एक बूंद को कोई पूरा जान ले , तो पूरे सागर को जान लिया ; कुछ और जानने को बचता नहीं है । क्योंकि एक बूंद में सब सूक्ष्म रूप से पूरा सागर मौजूद है । पिण्ड में ब्रह्मांड मौजूद है । आत्मा में परमात्मा मौजूद है । व्यक्ति में समष्टि मौजूद है । " 39

xxxxx सूक्तियां :

ओशो का साहित्य तो सागर के समान है । और सागर में मौक्तिक भी होते हैं । ये सूक्तियां जो ओशो साहित्य में उपलब्ध होती हैं , वे उन मौक्तिक के समान हैं , उन मोतियों के मानिंद हैं । सूक्ति गुलदस्ते के समान है । जिस प्रकार पौधे में तना होता है , डालियां होती हैं , पत्ते होते हैं ; परन्तु पौधे के अस्तित्व की अभिव्यक्ति तो पुष्प में ही होती है । वह पुष्प , वह सुमन उसकी आत्मा है । ठीक उसी प्रकार बड़े-बड़े लेखक जब कुछ लिखते हैं । कोई कहानी, कोई निबंध , कोई लेख ; तो बीच-बीच में विचार-पुष्पों के रूप में

सूक्तियां अपने-आप आ जाती हैं । ओशो साहित्य में तो इतनी सूक्तियां उपलब्ध होती हैं कि उन्हें लेकर एक पूरा "ओशो : सूक्तिकोश" तैयार हो सकता है । परंतु यहां हमारा अभिप्राय ओशो की भाषा-शैली की एक खासियत के रूप में उसकी चर्चा है , अतः बहुत संक्षेप में कुछेक उदाहरणों द्वारा काम चलाया है ।

§1§ प्यासे हम तड़पते हैं ; रेगिस्तानों में भटकते हैं ; द्वार-द्वार भीख मांगते हैं -- और भीतर अमृत का झरना बहता है । §2§ जिस मात्रा में तुम जागते हो , उसी मात्रा में सपना अपना मालूम होने लगता है । §3§ एक बार बाहर से अतृप्ति होने लगे , तो भीतर की स्मृति आएगी । जब बाहर की खोज व्यर्थ हो जाती है , तभी कोई भीतर की खोज पर निकलता है । §4§ स्वयं को बलिदान कर देना , स्वयं को मिटा देना ही सूत्र है -- स्वयं को पा लेने का । §5§ जीवन तो प्रतिपल नया करना होता है । जीवन पत्थरों की तरह नहीं है , फूलों की तरह है । §6§ धार्मिक जीवन तो प्रतिपल नया उगता हुआ फूल है । धार्मिक जीवन तो प्रतिपल अतीत की मृत्यु है और वर्तमान का जन्म है । §7§ क्रिया गौण है , बाहर है ; होना भीतर है , मूल है । होकर ही कोई परमात्मा को पाता है । करना तो पत्तों की तरह है — निकलते चले जाते हैं । होना जड़ की तरह है । §8§ प्रेम एक भावदशा है । §9§ तुम्हारा होना ही तुम्हारी प्रार्थना है । तुम्हारा रोआं-रोआं प्यासा हो । तुम्हारी धड़कन-धड़कन में चाह हो — ऐसी चाह कि शब्द भी छोटे पड़ जाएं । तुम एक लपट की तरह जिस दिन खड़े हो जाओगे , उसी क्षण तुम्हें वह मिल जायेगा । §10§ धर्म की अनुभूति इतनी ताजी और कुंआरी है , "वर्जिन" है , जब भी किसी को होगी उसे यह ख्याल भी नहीं आ सकता है कि यह पुरानी हो सकती है । §11§ अर्धसत्य सदा ही संगत हो सकता है । "कंसिस्टेंट" हो सकता है । पूर्ण सत्य सदा ही असंगत होगा , इनकंसिस्टेंट होगा । क्योंकि पूर्ण में विरोधी को भी समाहित करना होगा । §12§ शब्द तो मेरे समझने ही पड़ेंगे लेकिन शब्द के साथ-साथ जो निःशब्द का

इंगित है वह भी समझना पड़ेगा । {13} समझौते से कोई कभी भी सत्य पर नहीं पहुंचता । {14} ध्यान को मैं शून्य की तरफ ले जाने का माध्यम मानता हूं । {15} यह जीवन बहुमूल्य है, लेकिन तुम्हें मुफ्त मिला है, इससे यह मत समझ लेना कि व्यर्थ है । तुम्हें भेंट की तरह मिला है, इससे भूल मत जाना । तुमने कमाया नहीं है, इसके तुम पात्र नहीं हो, यह उसकी अनुकंपा है, इसलिए विस्मरण मत कर बैठना । स्मरण करो, बार-बार स्मरण करो उसकी अनुकंपा का और अनुग्रह से भरो, झुको, ताकि किसी दिन यह अपूर्व अनुभव तुम्हारा भी अनुभव बन सके । [40]

ऐसी तो अनेक सूक्तियां पृष्ठ-पृष्ठ और परिच्छेद-परिच्छेद पर बिखरी पड़ी हैं । इन पर अलग से भी शोध-कार्य हो सकता है । अध्याय के अंत में निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि ओशो भी कबीर की भांति भाषा के "डिक्टेटर" हैं और न केवल भारतीय भाषाओं के अपितु विश्वभाषाओं से भी हिन्दी में शब्द ले आये हैं और इस प्रकार हिन्दी की शब्द-संपदा को समृद्ध किया है । ओशो-दर्शन की भांति ओशो की भाषा भी निर्बन्ध है । कहीं-कहीं एक पैराग्राफ-से लम्बे वाक्य तो कहीं-कहीं बिलकुल छोटे-छोटे वाक्य । वाक्यों का प्रारंभ "और" और "लेकिन" से भी हो सकता है । इसका एक कारण यह है कि ओशो की भाषा "मुख-बोलन्ती" भाषा है । और "मुख-बोलन्ती" भाषा होने के बावजूद उसका जो वैभव है वह अद्भुत है । ओशो के यहां हमें भाषा का अद्भुत ठाठ देखने को मिल सकता है । उनकी भाषा में काव्यात्मकता है, उपमानों का अनूठापन है, शब्दों के अनूठे प्रयोग हैं, प्रतीकात्मकता है, व्यंग्यात्मकता है । उनकी भाषा में कभी मैदानी नदी की गंभीरता दृष्टिगत होती है, तो कभी पहाड़ी झरने का वेग और गतिशीलता । ओशो सचमुच शब्दों के जादूगर हैं । यहां हंसी-मजाक और हास्य मिलेगा, अट्ट-हास्य मिलेगा, नर्म-मर्म-सा मृदु हास्य मिलेगा । भाषा का वैभव देखना

हो तो ओशो की भाषा पर गौर कीजिए । भाषा की रवानी देखनी हो तो ओशो की भाषा देखिए । कल-कल करती हुई पहाड़ी नदी-सी है ओशो की भाषा । कभी -कभी कानों में छोटी-छोटी हजारों घंटियां बजा देते हैं ओशो , क्योंकि वे जिह्वा से नहीं हृदय से बोलते हैं । कई बार उनका मकसद होता है श्रोता के मस्तिष्क ×××× को झिंझोड़ना , तो कई बार वे श्रोता के मन को शब्दों की लोरियों से सुला भी देते हैं । आप ओशो से असहमत हो सकते हैं , पर ओशो को खारिज नहीं कर सकते । यह ओशो की बहुत बड़ी सफलता है । ओशो में सागर-सी महाकाव्यात्मकता है , व्यास है , फैलाव है ; तो कहीं दोहात्मक सामासिकता भी । उनकी भाषा में विराट प्रकृति का सौन्दर्य , निर्बन्ध सौन्दर्य है , तो कहीं फूल-सा , गुलदस्ते सा सबन्ध सौन्दर्य भी ।

ळळळळळळळळळ XXXXXXXX ळळळळळळळळ

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ ओशो : सुरेश दलाल : पृ. 6 ।

§2§ओशो टाइम्स : इंटरनेशनल : सितम्बर : 1995 : पृ. 9 ।

§3§ ओशो टाइम्स : इंटरनेशनल : जून- 1996 : पृ. 7 ।

§4§ वही : पृ. 8 ।

§5§ ओशो टाइम्स : वार्षिक अंक : 1997 : पृ. 14-15 ।

§6§ ओशो टाइम्स : अगस्त : 1997 : पृ. 29 ।

§7§ शिक्षा में क्रांति : पृ. 375-376 §8§ वही : पृ. 377 ।

§8§ द्रष्टव्य : स्वर्ण पाखी था कभी ...

§10§ ओशो : सुरेश दलाल : पृ. 5-6 ।

§11§ आखर थोरे आहिं : भूमिका : सूखे सेमल के वृन्तों पर ।

§12§ ओशो टाइम्स : ओशो महोत्सव स्मारिका अंक : 1996 :
पृ. क्रमशः 12, 12, 12, 12, 12, 13, 13, 13, 13, 14, 15, 15,
15, 15, 16, 17, 17, 18, 19, 20, 20, 21 ।

§13§ वही : पृ. क्रमशः 12, 12, 12, 12, 13, 13, 13, 14, 14, 14, 14,
15, 15, 16, 16, 16, 16, 17, 19, 20, 20, 20, 36, 36, 36, 36,
36, 37, 37, 37, 37, 37, ।

§14§ वही : पृ. क्रमशः 12, 12, 12, 13, 14, 14, 14, 15, 15, 15, 15,
15, 15, 15, 16, 16, 16, 16, 16, 17, 17, 17, 17, 20, 20, 21,
21, 21, 21 ।

§15§ वही : पृ. क्रमशः 18, 18, 19, 19, 19, 36, 36, 37, 37, 37,
37, 37, 42, 43, 43, 44, 44, 44, 45, 45, 45, 45, 45 ।

§16§ ओशो टाइम्स : वार्षिक अंक : 1993 : अरी मैं तो नाम के रंग छा।
रंग छकी से एक अंश उद्धृत : पृ. 2 ।

§17§ ओशो टाइम्स : ओशो महोत्सव स्मारिका अंक : 1996 :
पृ. 12 ।

§18§ वही : पृ. 15 §19§ वही : पृ. 44 ।

§20§ वही : पृ. 18 §21§ वही : पृ. 15 ।

(22) ओशो टाइम्स : ओशो महोत्सव स्मारिका अंक : 1996 : पृ. 19-20 ।

(23) वही : पृ. 16   (24) वही : पृ. 21 ।

(25) वही : पृ. 21 ।

(26) आपुई गयी हिराय : पृ. 11 ।

(27) लगन महूरत सब झूठ : पृ. 77 ।

(28) मुल्ला नसरुद्दीन : भूमिका से ।   (29) वही : पृ. 47 ।

(30) वही : पृ. 125   (31) वही : पृ. 124 ।

(32) ओशो टाइम्स : ओशो महोत्सव स्मारिका अंक : 1996 : पृ. 21 ।

(33) स्वर्ण पाखी था कभी .... पृ. 154 ।

(34) ओशो टाइम्स : अगस्त : 1997 : पृ. 25 ।

(35) ओशो महोत्सव स्मारिका अंक : 1996 : पृ. 12 ।

(36) ओशो टाइम्स : अगस्त : 1997 : पृ. 24 ।

(37) स्वर्ण पाखी था कभी .... पृ. 173-174 ।

(38) ओशो स्मारिका अंक : 1996 : पृ. 15 ।

(39) वही : पृ. 17 ।

(40) ओशो महोत्सव स्मारिका अंक : 1996 : पृ. क्रमशः 14, 15, 15, 16, 16, 16, 18, 18, 21, 42, 43, 45, 45, 47, 98 ।

========= XXXXXXX ==========

:: अध्याय : सात ::

:: उपसंहार ::

:: अध्याय : तीन ::

:: उपसंहार ::

आचार्य रजनीश , भगवान रजनीश , ओशो — तीन चरण हैं , तीन सोपान हैं । क्रमिक विकास है , निरंतर विकास है । क्योंकि गतिशीलता ही उनका एकमात्र अभिलक्षण है । "इकबाल जिन्दा वो कौम होती है , जिनकी सुबह कहीं शाम कहीं होती है " — यह इकबाल का ही नहीं ओशो का भी खयाल है । बीसवीं शताब्दी का सर्वाधिक विवादास्पद व्यक्तित्व । लोग उनके दुश्मन हैं , लोग उनके दीवाने हैं । और लोग जो उन्हें नहीं जानते हैं , चूंकि उन्हें जानना कठिन है , टेढ़ी खीर है ; दो तरह की बात करते हैं — एक. ओशो बदमाश हैं , सेक्स-गुरु हैं , अमीरों के गुरु हैं , बकवास है । दो. ओशो विद्वान हैं , बहुश्रुत हैं , कुछ भी कहो उनके तर्क बहुत जोरदार होते हैं । इन दूसरे किस्म के लोगों ने ओशो को

थोड़ा-बहुत पढ़ा है । हमारी गणना भी शायद इन दूसरे किस्म के लोगों में होती है । क्योंकि ओशो को जानने वाले तो मौन हो जाते हैं -- "मन मस्त हुआ तब क्यों बोले " । वे नाचते हैं , कूदते हैं , अस्तित्व में लीन हो जाते हैं , क्योंकि स्वयं को खोकर ही स्वयं को पाया जाता है ।

ओशो कहीं भी पकड़ में नहीं आते । क्योंकि जहां भी आप उन्हें पकड़ने जायेंगे , रूप बदल चुका होगा , नजारा बदल चुका होगा, मंजर बदल चुका होगा । पानी को पाणि से नहीं पकड़ा जा सकता, हां , हाथ जरूर थोड़े ~~थिम~~x गीले हो जायेंगे । और जिनके हाथ थोड़े गीले हो गये हैं वे समझते हैं कि उन्होंने ओशो को पा लिया , ओशो को समझ लिया । नहीं , हाथ गीले करने से काम नहीं चलेगा । डूबना पड़ेगा , सराबोर होना पड़ेगा , मिटना पड़ेगा , भूलना पड़ेगा । और जब यह घटित होगा , यह घटित हो सकता है , यह घटित हुआ है , बुद्ध के साथ , महावीर के साथ , जीसस के साथ , कबीर के साथ ; और तब फिर वही स्थिति होगी जो कबीर और वाजिद के साथ हुई थी । दो दिन तक बैठे रहे -- आमने-सामने और कुछ बोले नहीं ।

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं गयी , मैं भी हो गयी लाल ।।

ओशो ज्ञान की बात करते हैं , और ज्ञान को नकारते हैं । ओशो तर्क की बात करते हैं और तर्क को नकारते हैं । ओशो चार्वाक की बात करते हैं और चार्वाक को नकारते हैं । कृष्ण की बात करते हैं और कृष्ण को नकारते हैं । कुछ तत्व हैं इस सृष्टि में जो अमूर्त हैं -- प्रेम , ईश्वर , भाव , कविता , भक्ति , सौन्दर्य । ये अपरिभाषेय हैं । आप उन्हें परिभाषा के पिंजरों में नहीं डाल सकते । ओशो भी अस्तित्व का ऐसा ही एक अपरिभाषेय अंश है । अंश भी , अंशी भी ।

ओशो जितने लोजिकल हैं, उतने ही इल-लोजिकल। जितने कंसिस्टेंट हैं, उतने ही इनकंसिस्टेंट। जितने व्यावहारिक हैं (समस्याओं के निरूपण तथा हल के संदर्भ में) उतने ही अव्यावहारिक। जितने ही महफिल के, उतने ही एकान्त के। सुखवादी होते हुए सुख का विरोध भी करते हैं। सुखवादी होते हुए दुख को अपनाते हैं, दुख का मुकाबला करते हैं। पूंजीवाद से समाजवाद की ओर जाने की बात करते हैं। दलितों और गरीबों के पक्षधर होते हुए गरीबी को अभिशाप मानते हैं, xxxxx गरीबी को महिमा-मंडित नहीं करते। गरीब को दरिद्रनारायण नहीं कहते। वे तो कहते हैं नारायण कभी गरीब नहीं होगा। ओशो कब, क्या, कैसे कहेंगे कुछ कहा नहीं जा सकता। एक बार एक व्यक्ति ने ओशो से प्रश्न किया कि महात्मा गांधी दो लड़कियों के कंधों पर हाथ रखकर क्यों चलते थे? प्रश्नकर्ता शायद कोई मजाकभरी बात सुनने के मूड में था, गांधी के विरुद्ध कुछ सुनना चाहता होगा, परंतु अनेक विषयों में गांधी की कटु आलोचना करने वाले ओशो वहां गांधी पर अनराधार बरसते हैं और कहते हैं कि हमारी इस पूरी परंपरा में आखिर कोई तो ऐसा पुरुष निकला जो नारी के कंधों का सहारा लेता है। नारी को अबला नहीं समझता। नारी पर भरोसा करता है। तो ओशो "अनप्रिडिक्टेबल" हैं।

ओशो ने एक स्थान पर कहा है कि मेरे जितना जगत में कोई बोला नहीं होगा, फिर भी वे स्वयं को शब्दों का मनुष्य नहीं मानते। वे शब्दों के पार जाना चाहते हैं, शब्दों के पार गये हैं। वे कहते हैं शब्द तो सिर्फ जाल है विचार रूपी मछलियों को पकड़ने के लिए, मैं तो अशब्द हूं, निःशब्द हूं।

गुजराती के कवि-आलोचक-विचारक सुरेश दलाल ओशो के संबंध में कहते हैं — " रजनीशजी मुझे अच्छे लगते हैं, वे क्या खाते थे, क्या पीते थे, किसके साथ सोते थे, किसके साथ जगते थे, उन बातों

से मुझे कोई निस्बत नहीं है । मुझे निस्बत है उनके विचारों से । उनकी विचारधारा से हम सहमत हों या न हों -- वे स्वयं भी कहाँ हमेशा सम्मत हुए हैं अपने विचारों से ? आज एक बात कहेंगे , कल दूसरी ; उसका अर्थ यह हुआ कि वे स्वयं भी अपनी बात को टोकते थे , मिटाते थे और पुनः बोलते थे । " ‹ओशो : सुरेश दलाल : पृ. 33-34›

पर इन अन्तर्विरोधों में भी , इन परस्पर विरोधी बातों में भी , कहीं कुछ ऐसा है जो हमें आकर्षित करता है । ओशो कहते हैं कि जब हम जनमते हैं तो बीज रूप में जनमते हैं , वृक्ष रूप में नहीं । हमें वृक्ष के रूप में विकसित होना है , पुष्पित होना है , उसीमें मानव-जीवन की सार्थकता है । जीने का अर्थ है जीवन को गहराई से प्रेम करना । हर क्षण को उत्सव बना देना । "उत्सव आमार जाति , आनंद आमार गोत्र । " जिंदगी से सुंदर , जिंदगी से दिव्य कुछ भी नहीं है । हमारे पास समय कम है । उसे गमगीनी में , गुस्से में , धिक्कार में , असूया-ईर्ष्या में गंवा देना सरासर मूर्खता है । हमें अपना समय और शक्ति प्रेम में , सृजनशीलता में , ध्यान में लगाना चाहिए । जीवन का अर्थ ही है सतत बहते रहना । जिस क्षण आप परिवर्तित न होंगे , उसी क्षण आप शव हो जाओगे । धार्मिकता का अर्थ किसीमें मानना यह नहीं , पर किसीको जीना है , कुछ महसूसना है , अपने मन की मान्यता नहीं , पर अपने अस्तित्व की सुगंध को । सम्पूर्ण दुनिया को जानना यह स्वयं को जानने के समक्ष बिलकुल तुच्छ है । कोई मनुष्य न बड़ा है , न छोटा , न एक-दूसरे के समान । प्रत्येक मनुष्य अनन्य और अद्वितीय होता है । प्रत्येक मनुष्य में कुछ ऐसा होता है , जो दूसरे में नहीं होता । जरूरत से ज्यादा गंभीर रहना यह एक बीमारी है , मनोरोग है । हास्य की सूझ-बूझ धार्मिकता का ही अंश है । क्रोध कमजोरी की निशानी है । हृदय का संबंध अस्तित्व के साथ है , बुद्धि का

संबंध समाज से होता है । सत्य के सबसे बड़े दुश्मन तथाकथित ज्ञानी हैं और उसके सबसे प्यारे मित्र वे हैं जो कुछ भी नहीं जानते । आसक्ति के बिना चाहना ही सच्चा प्रेम है । प्रेम में बंधन नहीं होता , प्रेम में ईर्ष्या नहीं होती । राजकारण एक रोग है , उसकी चिकित्सा होनी चाहिए , सर्जरी होनी चाहिए । पुरुषों ने स्त्रियों का बहुत दमन किया है , यह भी एक राजकारण है । आधी मानवता स्त्रियों से भरी हुई है परंतु उसे शिक्षा से दूर रखा , पवित्र ग्रन्थों से दूर रखा , भक्ति से दूर रखा , ईश्वर के समक्ष भी वह पुरुषकी समान भूमिका पर न आ सके ऐसी उसकी दुर्गति की । लोगों को स्वतंत्रता अच्छी लगती है , जवाबदारी नहीं । उसे परिपक्व , प्रबुद्ध , मैच्योर्ड व्यक्ति कहते हैं जिसकी उपस्थिति होती है , पर वह उपस्थित नहीं होता । वह एक शिशु जैसा होता है । अवस्था में बड़ा पर आध्यात्मिकता में एक बच्चे जैसा । परिपक्वता की अपनी एक खुशबू होती है , अपनी सौरभ , अपनी गंध जो व्यक्ति को अनुपम सौन्दर्य प्रदान करती है । परिपक्व मनुष्य प्रेम का पुष्प होता है । परंतु हमने परिपक्वता की परिभाषा को ही बदल दिया है । हमारी दृष्टि में परिपक्व व्यक्ति याने कनिंग व्यक्ति । अमूमन एवरेज मनुष्य । और मध्यम कक्षा के लोग कभी पागल नहीं हो सकते । और अस्तित्व को पाने के लिए , प्रेम के लिए , भक्ति के लिए , मनुष्य होने के लिए , धार्मिकता की प्राप्ति के लिए , पुष्प होने के लिए, कबीर होने के लिए , मीरां होने के लिए , मलूक और रैदास होने के लिए , सहजो और दया होने के लिए , सहज-समाधि के लिए , दुनिया जिसे पागल कहती है , उसका होना जरूरी है ।

लाख विरोधों के रहते ओशो अविरोध के व्यक्ति हैं । लाख द्वैत के रहते ओशो अद्वैत के व्यक्ति हैं । एक तरफ ओशो अगन-गोला हैं तो दूसरी तरफ हीम-शीतल नगाधिराज । परंतु समग्र ओशो-साहित्य पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि ओशो कुरूढ़ियों , कुपरंपराओं,

कुविचारों , प्रगतिविरोधी बातों , गतानुगतिकता , असृजनशीलता , अधार्मिकता , छद्म-धर्म के ढोंग-ढकोसले , पंडे-पुरोहित , मुल्ला-मौलवी-पोप , केवल भौतिकता का विरोध , केवल आध्यात्मिकता की पक्षधरता , पूंजीवाद का अर्थहीन विरोध , अप्रासंगिक गांधीवाद का प्रचार , गतानुगतिक शिक्षा-पद्धति , मनु , शंकराचार्य , तुलसी , राम , राम-राज्य , कृष्ण की युद्ध-पक्षधरता प्रभृति का जमकर विरोध करते हैं ; वहां वे शोषित पीड़ित मानवता के हमेशा पक्षधर रहे हैं । वे मनुष्य और मनुष्य के बीच की दीवारों को ढहाते हैं ; फिर ये दीवारें धर्म , सम्प्रदाय , भाषा , जाति, राष्ट्र या भगवान को ही लेकर क्यों न हो । ओशो जीवनवादी हैं । मानववादी हैं । शांतिवादी हैं । आनंदवादी हैं । सुखवादी हैं । अतः उनके साहित्य में हमें मानवता को एक कदम आगे बढ़ाने वालों के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा के भाव मिलते हैं । बुद्ध , महावीर , लाओत्से, जैन साधु , चार्वाक , लोकायत , सरहपा , शबरपा , गोरख , कबीर , दादू , नानक , रैदास , मलूक , पलटू , सहजो , दया , मीरां , वाजिद , रज्जब , भीखा , जरथुस्त्र , क्राइस्ट , मुहम्मद, कृष्ण , ज्योतिबा फुले , कोल्हापुर के शाहू महाराज , डा. बाबासाहब अम्बेडकर प्रभृति के लिए भारोभार पक्षपात मिलता है । परंतु इन सबकी बात करते हुए उनसे पार जाने का प्रयत्न उन्होंने किया है । चार्वाक की प्रशंसा करते हुए वे चार्वाक-दर्शन की पूर्णता पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं । ओशो का मानना है कि चार्वाक की भौतिक दृष्टि से ही आगे का आध्यात्मिक पथ आलोकित होता । यदि हमने चार्वाकों की , लोकायतों की , बुद्धिस्टों की उपेक्षा - अवमानना न की होती ; उनके साथ अत्याचार और जुल्म न किये होते तो आधुनिक काल की उषःवेला में विज्ञान का सूरज शायद पूरब में उदित हुआ होता । ओशो आत्मा को स्वीकारते हैं , पर इसलिए शरीर की उपेक्षा नहीं करते , बल्कि शरीर को महत्व देते हैं कि वह आत्मा का मंदिर है है । मूर्ति ही नहीं , मंदिर का

भी महत्त्व होता है । और मंदिर-मस्जिद के लिए लड़ने वाले ईश्वर-अल्लाह के इस मंदिर-मस्जिद की क्यों उपेक्षा करते हैं ?

ओशो को कबीर और मीरां के लिए पक्षपात है । जब वे मीरां के गीतों पर बोलते हैं तब बोलते नहीं बरसते हैं, बहते हैं, भावधारा में । वे कहते हैं मीरां स्वयं प्रेम का एक गीत है । मीरां के प्रेम में एक अनोखी खुमारी है, रस है । उनमें बेशुमार आँसू हैं । लबालब आनंद है । मीरां से अधिक सुंदर आँसू किसीके नहीं हो सकते । मीरां ने गाते समय अपना हृदय निचोड़ के रख दिया है । यदि कृष्ण को समझना हो तो मीरां से बेहतर सेतु नहीं मिलेगा । मीरां ने भजन लिखे नहीं हैं, अनायास लिख गये हैं । मीरां के घुंघरूओं की रणकार से भजन जनमे हैं । इसलिए वे ताजा फूल के समान हैं । मीरां की भक्ति को समझना हो तो भक्तों की मस्ती को समझना पड़े । भक्ति नर्तन करता हुआ धर्म है । भक्ति शाश्वत यौवन समान है । तर्कवादी बुद्धि में अटक गये हैं, त्यागी देह में । मीरां के तलवों में भक्ति नृत्य कर रही है । जो मीरां ने गाया है वह केवल मीरां ने नहीं, अपितु परमात्मा ने भी गाया है ।

ओशो को कृष्ण के लिए भी पक्षपात है । हालांकि कहीं-कहीं कृष्ण की कड़ी भर्त्सना भी की है, तथापि समग्रतया देखा जाये तो कृष्ण के पक्ष में ओशो अधिक बोले हैं । राम सरल रेखा के समान है । राम सुंदर है, पर उनमें रस नहीं । बुद्ध अपूर्व है, किन्तु मौन हैं । उनका मौन गीत नहीं होता । महावीर जिस वृक्ष के समीप खड़े रहते हैं उसे धूल स्पर्श नहीं करती, परंतु वे वृक्ष की भांति खिलते नहीं है । कृष्ण पूर्णावतार है । कृष्ण में परमात्मा और जगत का मेल है । कृष्ण में रस भी है और रास भी है ।

इस प्रकार ओशो साहित्य तो एक सागर के मानिंद है । सागर विशाल है । सागर विराट है । कहीं उथला है, कहीं गहरा है । कहीं शांत, कहीं तरंगायित तो कहीं झंझावात । प्रस्तुत अध्ययन में ओशो को पाने

का जो प्रयास है वह हाथों द्वारा पानी को पकड़ने के प्रयास जैसा है । केवल हाथ ही भीगे हैं ।

गुजराती में एक कहावत है — " पुत्रनां लक्षण पारणामांथी अने वहुनां लक्षण बारणामांथी — अर्थात् पुत्र जब पालने में झूलता है तब से पता चल जाता है कि आगे चलकर वह कैसा बनेगा और बहू का प्रवेश जब घर में होता है तब उसके आंगन में पैर धरते ही पता चल जाता है कि वह कैसी निकलेगी । बचपन से ही ओशो बहुत शरारती थे । कृष्ण और ओशो के बचपन में बहुत साम्य दृष्टिगोचर होता है । कृष्ण का लालन-पालन नंद-जशोदा ने किया था , ओशो का लालन-पालन नाना-नानी ने किया । कृष्ण को भी बचपन में बेशुमार प्यार मिला । ओशो को भी बचपन में बेशुमार प्यार मिला । डर नामकी चीज को न कृष्ण जानते थे , न ओशो । दोनों के बचपन के कारनामों से उनके अभिभावक परेशान थे । ओशो मेधावी थे । उनकी स्मरण-शक्ति गजब की थी । उनकी तर्क-शक्ति लाजवाब थी । अतः शिक्षक , पोंगा-पंडित आदि सभी ओशो से परेशान थे ।

11 दिसम्बर , 1931 में मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा गांव में जैन व्यापारी परिवार में उनका जन्म हुआ । सन् 1938 तक नाना-नानी के पास रहे । उसके उपरांत माता-पिता के पास आ गये । सन् 1946 में उन्हें प्रथम "सतोरी" का अनुभव हुआ , उसके बाद उनकी आध्यात्मिक उत्कटता और भी बढ़ गई । 21 मार्च , 1953 को वे आत्मज्ञान को उपलब्ध हुए । सन् 1956 में सागर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में एम. ए. किया । युनिवर्सिटी में उनके ज्ञान तथा तर्कशक्ति से प्रोफेसर वगैरह बहुत आतंकित एवं परेशान रहते थे । उनका अधिकांश अध्ययन स्वाध्याय का ही था । सन् 1957 में रायपुर के संस्कृत कालेज में अध्यापन कार्य का प्रारंभ किया । सन् 1966 में उन्होंने इस पद को छोड़ दिया ताकि बृहत्तर मानव-समाज को प्रबोधित किया

जा सके । छठे-सातवें दशक में वे "आचार्य रजनीश " के नाम से भारत के कोने-कोने में भ्रमण करते रहे और अपनी वक्तृत्व-शक्ति से लोगों को संमोहित करते रहे । यहां से उनके आध्यात्मिक जीवन की यात्रा शुरू हुई जो निरंतर ऊंचाइयों को छूती गई । उनका शिष्य समुदाय हजारों से लाखों का हो गया । आचार्य रजनीश से भगवान रजनीश और अंत में ओशो । निरंतर विकास , निरंतर गति । स्थान भी बदलते गये । गाडरवाड़ा से जबलपुर , जबलपुर से बम्बई और बम्बई से पूना । वहां से विश्व-भ्रमण यह सब पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है । लोकतंत्र की बांग पुकारने वाले अमरिका तथा पश्चिम के देशों ने उनके साथ कितना अमानवीय ,अलोकतंत्रीय व्यवहार किया , यह भी हम जानते हैं । परंतु ओशो का अध्ययन बढ़ता ही गया । उनकी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती ही गई । उनकी प्रेम-शक्ति बढ़ती ही गई । अन्ततः 19 जनवरी 1990 को उनका निधन हुआ । ओशो की समाधि पर खुदा गया है : " ओशो , जिनका न कभी जन्म हुआ न मृत्यु , जो केवल 11 दिसम्बर 1931 से 19 जनवरी 1990 तक इस पृथ्वी ग्रह की यात्रा पर आये । " इस कथन से यह भी संकेतित होता है कि इस पृथ्वी जैसे तो न जाने कितने जगत होंगे ।

आंग्ल लेखक सु एपलटन ने ओशो को इस सदी का सर्वाधिक विद्रोही व्यक्तित्व माना है । उन्होंने ओशो के जीवन को लेकर जो पुस्तक लिखी है , उसका शीर्षक है : " भगवान श्री रजनीश : ईसा मसीह के पश्चात सर्वाधिक विद्रोही व्यक्ति " । इन तमाम वर्षों में हमने देखा कि ओशो का चिंतन सर्वथा भिन्न है , मौलिक है । वे गतानुगतिकता के परम विरोधी है । हर बात को , हर समस्या को , वे एक नये एंगल से देखते हैं ।

साहित्य के जितने भी मानदण्ड हो सकते हैं , उन सब पर कसने पर प्रतीत होता है कि ओशो का साहित्य शास्त्र नहीं है , काव्य है ।

बल्कि ओशो की सृजनात्मकता शास्त्र को भी काव्य अर्थात् साहित्य बना देती है । अब कोई यह कहे कि मैं साहित्य लिखता हूं तब उसे साहित्य माना जाये ऐसा तो है नहीं । कबीर ने कब कहा था, मलूक ने कब कहा था, मीरां ने कब कहा था । अतः अब ओशो के साहित्य का मूल्यांकन करने का समय आ गया है ।

ओशो ने अपने जीवन में साढ़े पांच करोड़ शब्दों का प्रयोग किया है और उनकी पुस्तकों का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है । ओशो की जितनी पुस्तकें हैं उनके विषय में यदि आधा पृष्ठ भी लिखा जाये तो एक प्रबंध जितना आकार तो उसका हो हो सकता है । अतः प्रस्तुत प्रबंध में उनके साहित्य का विहंगावलोकन कराते हुए कुछेक ग्रन्थों की चर्चा की गई है जिनमें "कृष्ण-स्मृति", "महावीर-वाणी", "एस धम्मो सनंतनो", " अष्टावक्र की महागीता", "सुनो भाई साधो", "पद घुंघरू बांध", "सब सयाने एक मत", "कन थोरे कांकर घने" "जगत तरैया भोर की " "बिन घन परत फुहार", ॐ मणि पद्मे हुम" , "शिक्षा में क्रांति", "स्वर्ण पाखी था कभी आज है भिखारी जगत का " प्रभृति ग्रंथों को लिया गया है ।

ओशो के रूख को, ओशो के अभिप्राय को, ओशो के अभिमत को जानने-समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि ओशो किन पर बात करते हुए सावन की फुहार की तरह बरसे हैं । ऐसी शख्सियतों में कबीर, दादू, मीरां, मलूक, पलटू, सहजोबाई, दयाबाई, रैदास आदि आते हैं । ओशो ने इनके पदों की, शब्दों की जो व्याख्या की है, वहां आलोचक का रूप सामने आया है । ओशो की आलोचना को हम व्याख्यात्मक या विश्लेषणात्मक प्रकार की कह सकते हैं ।

अंत में ओशो के भाषा-शिल्प के संदर्भ में इतना ही कह सकते हैं कि ओशो का शिल्प सायास नहीं अनायास है । उसमें कृत्रिमता

नहीं सहजता है । उसमें बासीपन नहीं ताजगी है । ओशो की भाषा भी कबीर की तरह निर्बन्ध है । उसमें प्रवाह है, रवानी है, गहराई है, ऊंचाई है । ओशो ने हिन्दी की शब्द-संपदा को समृद्ध किया है । ओशो की भाषा में सरलता है, प्रौढ़ता है, व्यंजकता है, प्रतीकात्मकता है, व्यंग्यात्मकता है, सांकेतिकता है । उसमें हास्य-व्यंग्य के फव्वारे हैं । भाषाशैली कहीं व्यास है, तो कहीं समास, तो कहीं तरंग या धाराशैली भी मिलती है ।

अंत में केवल यही निवेदन है कि ओशो-साहित्य तो एक विराट महासागर के समान है, अनंत आकाश की संभावनाएं उसमें निहित है । प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा मैं केवल उसके शरीर तक पहुंच पाया हूं । आत्मा को पाना तो बड़ा कठिन है । परंतु इतना कह सकता हूं कि इससे एक दिशा खुलती है । ओशो साहित्य के इतने विभिन्न आयाम हैं कि कोई चाहे तो जीवन भर उस पर काम करता रहे । उसके एक-एक पक्ष को लेकर अलग से अध्ययन हो सकता है । उसके दर्शन को लेकर, उसके सामाजिक सरोकारों को लेकर, उसकी अवांतर कथाओं को लेकर, उसमें निहित दृष्टांतों को लेकर, उसमें निहित सूक्तियों को लेकर अलग-अलग अध्ययन हो सकते हैं ।

निराकार से साकार को पाना है । शब्द से ब्रह्म को पाना है । सीमा से सीमातीत होना है, तर्क से तर्कातीत होना है, भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर जाना है, पृथ्वी से अनंत की यात्रा को चल पड़ना है । और ये सब करना है इस लिए कबीर की भाषा में जीवन को उत्सव बनाकर मन गाना चाहता है :

> "मन मस्त हुआ तब क्यों बोले
> हंसा पाये मानसरोवर ताल-तलैया क्यों डोले ।।"

xxxxxx